समालोचना

१

कवि द्विजेन्द्रलालरायद्वारा कल्पित ग्रीक कन्या हेलन*की तरह मुगल-इतिहासकी नूरजहाँका नाम भी जादूसे भरा हुआ है। उसका नाम लेते ही एक सुन्दरीकी ज्वानीसे भरी मोहिनी मूर्ति मानों आँखोंके आगे आ जाती है और काव्य तथा इतिहासमें बुढ़ापेके तुषार-पातकी बात रहनेपर भी पाठकोंकी कल्पनामें सदा स्थिर जवानीवाली एक कामिनीका चित्र प्रकट हो उठता है। कितने ही काव्यों और कितने ही इतिहासोंमें कितनी ही मोहिनी महिलाओंका वर्णन है किन्तु, उन सबकी नायिकाओंके भाग्यमें चिर यौवनका लाभ नहीं बदा है। इसका कारण यही है कि सारी ही नायिकाओंकी स्मृति निरवच्छिन्न यौवन-सम्भोगके प्रसगके साथ जटित रहती है, उनके नामके साथ साथ युवावस्थाकी बात मनमे आ जाती है। विलासके पाप-मन्त्रसे अभिमन्त्रित हड्डीको घुमाये बिना आत्मा उन नायिकाओके ऐतिहासिक चित्रकी ओर ताकने नहीं देती, इसी कारण इस जादूकी सृष्टि हुई है। सीताके चरित्रमे पापका लेशमात्र चिह्न नहीं है, इसी कारण सीताका नाम लेनेसे रूप और अवस्थाके संसर्गसे रहित एक देवी-मूर्ति ही मानस-पटपर अंकित हो उठती है और उस मूर्तिके चारों ओर फैले हुए प्रकाशमें अनुभवसे परे एक अमानुषिक भाव प्रतिफलित हो उठता है।

कवि द्विजेन्द्रलाल रायने जब अपने इस नाटककी भूमिकामें प्रतिज्ञा की है कि हम आदर्श-चरित्र नहीं गढ़ेंगे तब इतिहासप्रसिद्ध नूरजहाँका आख्यान अवश्य ही ऐसे नाटकके उपयुक्त सामग्री है। कविने इस मोहनीके चरित्र-चित्रणमे कहींपर भी इतिहासका उल्लंघन नहीं किया। इतनी बड़ी प्रसिद्ध ऐति-

---

* द्विजेन्द्रबाबूके ‘ चन्द्रगुप्त ’ नाटकमें इस नायिकाका चरित्र पढ़िए।

हासिक घटनामें वैसा करना अच्छा भी न होता। आदर्शके गढ़नेमें बहुत-कुछ बदलना पड़ता है। मनके माफिक परिवर्त्तन करके काव्यका गढ़ना अपेक्षाकृत सहज काम है। प्रकृतिके द्वारा यथार्थमें जो कुछ हुआ है, उसके मर्मको समझ-कर, उसके भीतर छुपे हुए काव्यको लिखकर प्रकट करना ही कठिन है। जो सब छोटे छोटे नित्य होनेवाले कार्य हैं, उनके भीतर ही कविताकी सामग्री रहती है, किन्तु, बड़े कवियोंके सिवा अन्य किसीको वह सामग्री नहीं सूझती। इसीसे साधारण नवीन कविगण संसारको पददलित करके एकदम आकाशकी ओर ताकते हुए बादल और बिजलीके वर्णनमें ही व्यस्त रहते हैं। बहुत हुआ तो पृथ्वीपरकी घासपर पड़ी हुई ओसकी बूँदोंका बखान कर डालते हैं।

इस नाटकके काव्य-कौशलके सम्बन्धमें कवि स्वयं ही एक बात लिख गये हैं कि इस दृश्य काव्यमें 'स्वगत' नहीं है। श्रव्य काव्यमें बहुत सी बातें कहकर समझा दी जाती है, इसी कारण श्रव्य काव्यकी अपेक्षा दृश्य काव्यकी रचना कुछ कठिन है। उसपर अगर 'स्वगत' उक्तिके सहारेसे जो सहायता मिलती है, वह भी न रहे, तो फिर उत्तम कौशल (Art) की जरूरत बहुत अधिक हो जाती है। कविने उस कौशलको इस नाटकमे सम्पूर्ण रूपमे दिखाया है। यह बात इस नाटक-काव्यको पढ़े बिना समझी नहीं जा सकती। समालोचनामें अगर उसे दिखानेकी चेष्टा की जाय तो किसी एक बड़े दृश्यका उदाहरण देकर, अनेक उक्ति-प्रत्युक्तियोंका विश्लेषण कर, यह दिखानेकी आवश्यकता होगी कि जिन स्थानोंमें 'स्वगत' रह सकता था, वहाँ उसके न रहनेपर भी काव्यका मर्म दुर्बोध नहीं हुआ। इसी कारण इस विचारका भार मैं अपने विज्ञ पाठकोंपर ही छोड़ता हूँ।

प्रथम दृश्यमें नूरजहाँको (=मेहरुन्निसाको) हम देखते हैं कि वह स्वामी, कन्या और भतीजीके साथ सुखके स्वर्गमें समासीन है। गहरे विचारके साथ सोचे बिना यह नहीं समझ पड़ता कि उस समय मेहरुन्निसाके मनमें किसी उच्च आकांक्षाका बीज था, या पतिके सिवा किसी अन्य पुरुषकी छाया उसके मनो-मुकुरमें प्रतिफलित हो रही थी। अद्वितीय कवि भवभूतिके उत्तर-रामचरितके प्रथम अंकमें जो अपूर्व नाट्य कौशल है, वही यहाँ भी देखा जाता है। इस

कौशलको समझे बिना इस नाटकका पढ़ना ही वृथा है। इसी कारण मैं अपने वक्तव्यको और भी साफ करके लिखता हूँ।

उत्तरचरित पढ़ते समय पहले यह ख्याल होता है कि रामचन्द्र इतने प्रगल्भ वाक्योंसे सीताके आगे ही सीताकी महिमाका वर्णन क्यों कर रहे हैं? यथार्थ प्रेमिक तो ऐसा कभी नहीं करता। गुप्तचरने आकर बादको जो कुछ रामचन्द्रसे कहा उसे रामचन्द्र बहुत पहलेहीसे जानते थे, यह बात हम गुप्तचरके नियोगको देखकर ही समझ जाते हैं। रामचन्द्रने अच्छी तरह समझ लिया था कि प्रजा रंजनके लिए, आज हो या कल हो, उन्हें अपने 'हृदयं द्वितीय' को छोड़ देना पड़ेगा। उनका हृदय विषाद-विषकी ज्वालाओंसे जल रहा था, इसीसे जनकके जानेके बाद उन्होंने अन्तःपुरको नहीं छोड़ा, इसीसे वे बातचीत करते समय उच्छ्वासपूर्ण भाषामें सीताको सिर-आँखोंपर रखनेकी बात कहकर सीताको लज्जित कर रहे थे।

नूरजहाँ अपने मनमें दुःस्वप्न देख रही थी, इसीसे वह सोच रही थी कि इतना सुख असह्य होगा। इसीसे वह बारबार अपने पारिवारिक सुखका उल्लेख करके इस तरह उसकी आलोचना कर रही थी। इसीसे वह वचोंके सौन्दर्यकी सुनहली किरणोंमें अपनेको डुबाये रखना चाहती थी। जो कोई सौन्दर्यके भीतर रहता है, सुखके भीतर रहता है, वह कभी इस प्रकार प्रत्यक्ष भावसे सौन्दर्य और सुखको नहीं पाता। आगरेका नाम सुनकर नूरजहाँका चौंक पड़ना अगर इस दृश्यमें न रहता, तो भी कुछ हानि न थी। परन्तु कविने उसे दिखाकर नूरजहाँके मनके भावको विशेषरूपसे स्पष्ट कर दिया है।

मेहरुन्निसाका पति शेरखाँ सरल स्वभाव, उदार-प्रकृति, साहसी, वीर और धर्मभीरु पुरुष है। मेहरुन्निसा उसी देवताको प्रसन्न करनेकी साधनामें स्वप्न और छायासे रहित समाधि प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रही थी। उस तर्पणसे देवता तृप्त हो रहे थे। किस छिद्रसे आकर शनैश्चर सिरपर सवार हो जाता है, सो कोई नहीं जानता,—इतने बड़े राजा श्रीवत्स भी नहीं जान सके थे। बालिका मेहरुन्निसाने जहाँगीरके आगे सौन्दर्यके दंभ और जवानीके खयालसे एक लीला-विलास ही तो किया था। वह एक साधारण घटनाके सिवाय और कुछ न था। किन्तु कविने इस नाटकमें यह दिखाया है कि हमारे जीवनकी क्षुद्र रंगभूमिमें जो छोटे छोटे अभिनय हो जाया करते हैं उनका विराट् पुरुषके विराट् नाट्य-

मंचपर होने जा रहे महानाटकके प्रथम अङ्क और प्रथम दृश्यके समान है। चाहे राजाकी भाग हो और चाहे गरीबकी भाग हो, पर केवल हँसाकर, —प्रकृतिके सौन्दर्यको बढ़ाकर ही नहीं चली जाती, उसके कारण कभी कभी हृदयमें दारुण अग्नि भी भड़क उठती है। कहावत है कि शनिकी दृष्टि सर्वनाश किये बिना नहीं छोड़ती। लालसा और उच्च आकांक्षाकी आगसे पाप बहुत दूरपर था, परन्तु होनहारकी आँधी उसे आगरे उड़ा ले गई।

शेरखाँके समान वीरकी पत्नीके मनमें पापकी छाया छिपी है, इस बातको किसी तरह किसीपर भी प्रकट करना मेहरुन्निसाके लिए असम्भव था। अत्यन्त विश्वासपात्र सखीके सामने भी ऐसी कलङ्ककी बातको प्रकट कर देना स्वाभाविक नहीं है। तो भी मेहरुन्निसाने आगरेमें आकर एक सखीको बुलाकर और उससे सब बात खुलासा कहकर सद्बुद्धिका उपदेश चाहा। इस क्षुद्र दृश्यके कौशलमय वर्णनमें कविने समझा दिया कि सुन्दरी मेहरुन्निसाके हृदयके भीतर ऐसी हलचल मची हुई थी कि वह किसी तरह आत्म-रक्षा नहीं कर पाती थी। इसी आशासे मेहरुन्निसाने अपनी सखीसे जीका हाल खोलकर कह दिया कि पापकी छाया और दुःस्वप्नकी बात एक बार कह डालनेसे लज्जाके प्रभावसे शायद क्षीण हो जाय,—भूल जाय। पानीके भँवरमें पड़ा हुआ आदमी जैसे तिनकेका सहारा पाकर प्राण-रक्षा करना चाहता है, वैसे ही यह मेहरुन्निसाका एक विश्वासपात्र सखीसे सब हाल कहकर उपदेश माँगना है। चतुर्थ दृश्य पढ़कर देखो, उसकी किसी बातमें कुछ जोर नहीं है, सखीके उपदेशमें भी कुछ विशेषता नहीं है, मेहरुन्निसाकी प्रतिज्ञामें भी तेजी नहीं है। किन्तु गम्भीर भावसे पढ़ते ही समझमें आ जाता है कि नूरजहाँ बाहरसे चाहे जितनी स्थिरता दिखावे, मगर, उसके मनमें भारी हलचल मची हुई है। बहेलियेके मन्त्रसे चचल हुई चिड़िया एक बार प्राणपणसे पख फैलाकर अपने छोटेसे घोंसलेकी ओर चली है। चुपचाप थोड़ेसे शब्दोंमें इस प्रकार हृदयका चित्र अंकित कर देना साधारण क्षमताकी बात नहीं है।

शेरखाँने जब समझ लिया कि उसका सुख चला गया तब वह मृत्युको बुलानेके लिए अग्रसर हुआ। प्रथम अकके आठवें दृश्यमें मर्मस्थलको चोट पहुँचानेवाली इस घटनाका वर्णन है। जिन बातोंको कहकर शेरखाँ अपनी प्यारी स्त्रीसे बिदा हुआ, उन्हें यदि कविवर द्विजेन्द्रलाल राय स्वतन्त्र

कविताके रूपमें लिखते, तो वे अपनी मातृभाषाके इस भंगीके कविताके भाजनमें एक अमूल्य रत्न छोड़ जाते। भाग्यकी लगाई हुई आगके प्रचण्ड प्रकाशमें प्रकाशित और मर्म-वेदनाकी करुणामें सने हुए उस सरस सुकोमल प्रीतिके हताश गीतको मैंने अनेक बार पढ़ा है। उपमाके द्वारा भाव प्रकट करनेमें, प्रीतिकी मधुरतामें और धीरोदात्त भावकी चञ्चलताहीन कातरतामें वह कविका किया हुआ वर्णन बहुत ही उत्तम हुआ है। शेरखाँ कहता है "मैं मनुष्य हूँ,—दुर्बल मनुष्य-मात्र हूँ। और वह मेरी शुरू जवानी थी,—जब आकाश बहुत ही नीला देख पड़ता है, पृथ्वी खूब हरी-भरी जान पड़ती है; जब ये नक्षत्र वासनाकी चिनगारियों जैसे और गुलाबके फूल हृदयके रक्त जैसे जान पड़ते हैं; जब कोकिलाका गान एक स्मृतिके समान जान पड़ता है, मलय-पवन एक सुख स्वप्न-सा समझ पड़ता है; जब प्रणयीका दर्शन उषाका उदय, चुम्बन सजल बिजलीकी चमक और आलिंगन आत्माका प्रलय जान पड़ता है। उसी चढ़ती जवानीमें मैंने तुम्हारे रूपकी मदिरा पी थी।"

इसके बाद जब शेरखाँ मर गया तब भी नूरजहाँका हृदय उसका (=खुदका) विरोधी था, क्योंकि, हम लैलाके मुँहसे सुन पाते हैं कि मेहर पालतू चिड़ियाकी तरह स्वय ही बादशाही अन्त पुरमे आकर फँस गई। लैलाके सन्देह करनेका कारण था; नहीं तो वह हेम्लेटकी तरह उस अभागिनीके मनमें पिताकी यादको बराबर जमाये रखनेकी कोशिश क्यों करती रहती? किन्तु जब नूरजहाँ अपने पिता और भाईकी सुख-सम्पत्तिसम्बन्धी बात सुनकर भी जहाँगीरसे ब्याह करनेके लिए राजी नहीं हुई, किन्तु अन्तको बदला लेनेका मौका पानेकी बातके नवीन प्रकाशको पाकर उत्साहित हो उठी, तब क्या कोई पाठक बालिका लैलाके सन्देह या अनुमानको झूठ समझ सकता है? कभी नहीं। इस बातको विस्तृत भावसे आगे कहता हूँ।

नूरजहाँने कहा अवश्य था कि मै अपने हृदयकी शैतानी वृत्तिके प्रभावको प्राय दमन कर चुकी थी। किन्तु, इस बातका सहज अर्थ ग्रहण करनेसे बदला चुकानेके लिए उसमें विशेष उत्साहका भाव नहीं समझ पड़ता। शेरखाँकी स्त्री भी तो स्त्री ही है। अपने पैरोंके नीचे पड़े हुए भारतके राज्यकी बातको सोचना उसके लिए कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। रंग-ढगसे इस बातको समझकर लैला भी नाराज हो सकती है और शेरखाँके समान देवताको याद

मंचपर खेले जा रहे महानाटकके हरएक अंक और हरएक दृश्यसे सम्बन्ध है। चाहे खयालकी धारा हो और चाहे वर्षाकी धारा हो, वह केवल हँसाकर,—प्रकृतिके सौन्दर्यको बढाकर ही नहीं चली जाती; उसके कारण कभी कभी हृदयमें दारुण अग्नि भी भडक उठती है। कहावत है कि शनिकी दृष्टि सर्वनाश किये बिना नहीं छोड़ती। लालसा और उच्च आकांक्षाकी आगसे पतंग बहुत दूरपर था; परन्तु होनहारकी आँधी उसे आगरे उडा ले गई।

शेरखाँके समान वीरकी पत्नीके मनमें पापकी छाया छिपी है, इस बातको किसी तरह किसीपर भी प्रकट करना मेहरुन्निसाके लिए असम्भव था। अत्यन्त विश्वासपात्र सखीके सामने भी ऐसी कलंककी बातको प्रकट कर देना स्वाभाविक नहीं है। तो भी मेहरुन्निसाने आगरेमें आकर एक सखीको बुलाकर और उससे सब बात खुलासा कहकर सद्बुद्धिका उपदेश चाहा। इस क्षुद्र दृश्यके कौशलमय वर्णनमें कविने समझा दिया कि सुन्दरी मेहरुन्निसाके हृदयके भीतर ऐसी हलचल मची हुई थी कि वह किसी तरह आत्म-रक्षा नहीं कर पाती थी। इसी आशासे मेहरुन्निसाने अपनी सखीसे जीका हाल खोलकर कह दिया कि पापकी छाया और दुःस्वप्नकी बात एक बार कह डालनेसे लज्जाके प्रभावसे शायद क्षीण हो जाय,–भूल जाय। पानीके भँवरमें पडा हुआ आदमी जैसे तिनकेका सहारा पाकर प्राण-रक्षा करना चाहता है, वैसे ही वह मेहरुन्निसाका एक विश्वासपात्र सखीसे सब हाल कहकर उपदेश माँगना है। चतुर्थ दृश्य पढ-कर देखो, उसकी किसी बातमें कुछ जोर नहीं है, सखीके उपदेशमें भी कुछ विशेषता नहीं है, मेहरुन्निसाकी प्रतिज्ञामें भी तेजी नहीं है। किन्तु गम्भीर भावसे पढते ही समझमें आ जाता है कि नूरजहाँ बाहरसे चाहे जितनी स्थिरता दिखावे, मगर, उसके मनमें भारी हलचल मची हुई है। बहेलियेके मन्त्रसे चंचल हुई चिडिया एक बार प्राणपणसे पंख फैलाकर अपने छोटेसे घोंसलेकी ओर चली है। चुपचाप थोडेसे शब्दोंमें इस प्रकार हृदयका चित्र अंकित कर देना साधारण क्षमताकी बात नहीं है।

शेरखाँने जब समझ लिया कि उसका सुख चला गया तब वह मृत्युको बुलानेके लिए अग्रसर हुआ। प्रथम अंकके आठवें दृश्यमें मर्मस्थलको चोट पहुँचानेवाली इस घटनाका वर्णन है। जिन बातोंको कहकर शेरखाँ अपनी प्यारी स्त्रीसे विदा हुआ, उन्हें यदि कविवर द्विजेन्द्रलाल राय स्वतन्त्र

करके ब्याहके लिए राजी नूरजहाँ भी उस भावको शैतानी प्रवृत्ति कहकर अपने मनकी ग्लानिको प्रकट कर सकती है। लेकिन इसके यथार्थ सिद्धान्तका अनुसन्धान मनुष्य-चरित्रकी जटिलतामें करना चाहिए। केवल बदला चुकानेके लिए ही नूरजहाँने ब्याह नहीं किया। मुखसे वह चाहे जो कहे, मगर असल बात और ही थी। जब हम मनको भुलावा देकर कोई काम करते हैं तब छोटेसे किसी बहानेको ही बडा बनाकर दिखानेकी चेष्टा करते हैं। जहाँगीरके सम्बन्धमें एक दूसरी बात कहकर मैं फिर इसी बातको कहूँगा।

रेवा सुन्दरी, बुद्धिमती, पुण्यमयी, पति-भक्तिमें पूरी और पतिव्रता थी। स्त्रीके इतने गुणोंके बीच, उसके प्रतिदिनके गृहस्थीके प्रेमकी आडमें, प्रेमके पूर्वानुरागकी मधुरतासे परिपूर्ण चटकीले प्रेमके अभावको लख लेना किसी भी पतिके लिए सहज नहीं है। किन्तु जिसका चित्त पहलेहीसे लालसापूर्ण है उसके निकट ये सब गुण नमकसे खाली खूबसूरतीके समान हैं। शुरू जवानीकी नई दीप्तिमें नेत्रोंकी जो विलास-लीला घूँघटके सहसा खुल जानेसे जहाँगीरने देख ली थी, उसे वे कभी नहीं भूल सके। भोगकी तीव्र लालसामें पुण्यमयी पत्नीका संयत प्रेम कभी मधुर नहीं मालूम पड सकता। इसी कारण ऐसी अवस्थामें अनेक लोग हताश होकर शराब पीने लगते हैं। मैं सम्राट् हूँ, मेरी क्षमता असीम है, मैं क्या अपने वाञ्छित पदार्थके उपभोगसे वञ्चित रह सकता हूँ? इस भावने भी जहाँगीरके हृदयमें हलचल डाल दी थी। इससे उन्होंने छलसे, बलसे और कौशलसे,—जिस तरह बन पडा, अमानुषिक नर-हत्या तक कराकर,—नूरजहाँको प्राप्त किया। लालसाकी प्रचण्ड उत्तेजनामें, भोगकी गहरी साधनामें, पाप और पुण्यको तुच्छ समझकर जो कुछ पाया जाता है, मनुष्य सर्वत्र उसका ही हो जाया करता है। इसीसे बुद्धिमान् जहाँगीरने भी जान-बूझकर नूरजहाँकी गुलामीमें अपने और देशके मंगलको मिटा दिया। इसी स्वाभाविकताके कारण पाठकगण पहले जहाँगीरके भयानक पापाचरणपर क्रुद्ध होकर भी फिर उन्हें असहाय देखकर और उनका पतन देखकर दु:खित होते हैं। लेकिन नूरजहाँके लिए?—इसका उत्तर आगे दिया जाता है।

नूरजहाँकी शैतानी क्या केवल उसकी गौरव-लालसा ही है? और क्या केवल बदला चुकानेकी सुविधा पानेके लिए ही वह ब्याह करनेको राजी हो गई थी?

इस नाटकमें यह बात नहीं है कि नूरजहाँ प्रतिदिन अपनी बुद्धिसे एक नीति जाल (यहाँपर प्राचीन मतानुसार पालिसी policy के अर्थमे ही 'नीति' शब्दका प्रयोग किया गया है) रचकर प्रतिहिंसाके लिए उसे डालती और समेटती थी । असल बात भी यह नहीं है। क्यो कि, अपने सुखकी मात्रा बढ़ानेमे और अपनी क्षमताको अखण्ड बनानेमें उसने जितना पाप किया, एक दिन उसे सोचकर वह आप ही चौंक उठी थी। उसके उद्भ्रान्त पति जहाँगीरने जिस दिन मदिरा और आनन्दसे विह्वल होकर पूछा कि 'नूरजहाँ तुम देवी हो या मानवी?' उस दिन नूरजहाँने भर्राई आवाजमें कहा था, 'मै दानवी हूँ।' इसी तरहकी कुछ बाते नूरजहाँके चरित्रके सीमाहीन सागरमें छोटे छोटे टापुओंकी तरह दिखाई देकर उस सागरके विस्तारको दिखा देती हैं। नहीं तो उसके वारपार-हीन फैलावका अनुमान ही नहीं किया जा सकता।

नूरजहाँ अगर बदला चुकानेके लिए सब काम कर रही थी और गौरवके लिए ही लालायित थी, तो वह महाबतखाँसे परास्त होकर रो धोकर अपने प्राण बचानेकी चेष्टा न करती। जो लोग क्षमताके लिए पागल हो रहे हैं, प्रतिहिंसाके लिए उत्तेजित हो रहे हैं, वे अत्यन्त साधारण हारमे भी आत्महत्या तक कर डालते हैं। कवि द्विजेन्द्रलाल अगर इस अवस्थामें एक बार नूरजहाँको नही रुलाते तो हम लोग इस विषम जटिल चरित्रको अच्छी तरह कभी नहीं समझ सकते।

नूरजहाँ सुन्दरी थी, नूरजहाँ मोहिनी थी। उसके रूपके मोहके फेरमे पड़कर एक समय सारा भारत-साम्राज्य चकरा रहा था। जिस दिन होनीकी निर्दय फूँकसे वह जादू उड़ गया उस दिन अपने ही उठाये हुए चक्करमे पड़ कर नूरजहाँने क्षमताके तृणमात्रको पकड़कर खड़े होना चाहा, लेकिन वह खड़ी नहीं हो सकी,—उसी दिन पागल हो गई। तीव्र लालसाका * यही अन्तिम

* मुगलोंके अन्तःपुरकी तीव्र लालसाकी बात मैंने बारबार कही है लेकिन वहाँकी विद्या-चर्चाकी बात नहीं कही। मुगल-परिवारमें सभ्यता और विद्या-चर्चा पूरी तरहसे थी। दाराने उपनिषदोंका अनुवाद किया था। ग्रीक विद्याके पण्डित भी मुगलोंके दरबारमें उपस्थित रहते थे। इसी कारण इस ग्रन्थमें शाहजहाँके मुखसे अफलातून या हेगेलके ग्रन्थकी बातोंका कहलाना अस्वाभाविक नहीं है।

हैं, सो यह उनका भ्रम है। नूरजहाँ-चरित्र दुर्बोध नहीं हुआ,—वह सर्वत्र ही सुस्पष्ट है। अर्थात्, विजयबाबूने जो नूरजहाँ-चरित्रकी जटिलताका विश्लेषण किया है, उसे बहुत गहरा विचार करके आविष्कृत नहीं करना पड़ता। नूरजहाँके अपने मुँहसे कहनेपर भी,—आत्मप्रतारणा करनेपर भी, यह बात सहज ही समझमें आ जाती है कि उसने बदला लेनेके लिए सम्राट्से विवाह नहीं किया, उसके मनमें क्षमता और गौरवकी आकांक्षाके साथ साथ भोग-लालसा ही गुप्त रूपसे बलवती थी। द्विजेन्द्रकी सरलता और कला कुशलताने इस बातको समझनेका मार्ग सर्वत्र ही सुगम कर दिया है।

—स्वर्गीय कविवर वरदाचरण मित्र आई. सी. एस.

४

"... कविका यह कथन सर्वथा भित्तिहीन न होनेपर भी कि 'जन-साधारणको, विशेषकर किसी किसी समालोचकको, यह बहुत ही दुर्बोध प्रतीत होगी,' नूरजहाँका चरित्र रसग्राही पाठकोंके निकट उपभोग्य समझा गया है, उसका खूब आदर हुआ है और इस नाटककी रचना करके द्विजेन्द्रलाल नाट्य शिल्पीके श्रेष्ठ आसनको पानेके योग्य समझे जाकर साहित्य संसारमें अभिनन्दित हुए हैं।

"इस नाटकमें यद्यपि कविने किसी भी नीतिके प्रचारके उद्देश्यसे लेखनी धारण नहीं की है, तथापि स्वजाति और स्वदेशकी उन्नतिके मार्गमें जो सब विघ्न उनके हृदयमें व्यथा पहुँचाते थे वे प्रसंगानुसार उनकी लेखनीद्वारा पात्र और पात्रियोंके मुखसे स्वतः ही प्रकाशित हो गये हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

कर्णसिंह—जब देखता हूँ कि महाबतखाँके समान धर्मात्मा कर्मवीर व्यक्तिको कुछ आचार भेदके कारण हम अपना कहकर जातिके भीतर लेकर गले नहीं लगा सकते, तब समझमें आ जाता है कि हम लोगोंका अधःपतन क्यों हुआ है। जहाँ जीवन है वहाँ वह बाहरकी चीजको खींचकर अपना लेता है और जहाँ मरण है वहाँ वह खुद ही सौ टुकड़े होकर इधर-उधर बिखर जाता है।

कर्ण—इस साम्राज्यपर हम हिन्दुओंका फिर अधिकार हो जायगा, तो भी, हम उसे बनाये न रख सकेंगे। कारण, मैंने सोचकर देखा है कि जब तक हमारी जातिके लोग मनुष्य न बन सकेंगे तबतक हिन्दू-साम्राज्य विकारग्रस्त पुरुषका स्वप्न ही रहेगा।

पात्र-पात्रियोंके मुखसे कविने दो-चार सरल सत्य और नीतिकी बातें भी इस ग्रन्थमें कहलाई हैं—

खदीजा—साम्राज्य?—बाहरकी सम्पत्तिके लिए मनुष्य इतना लालायित है! वह नहीं देखता कि प्रत्येक मनुष्यके ही भीतर एक अतुल सम्पत्ति अनादरके साथ पड़ी हुई है।

रेवा—हम हिन्दू हैं। हमारी जातिने दूसरोंको बाँटनेके लिए ही जन्म लिया है। भला बतलाओ, यह भारतवर्ष भी क्या हमने इसी तरह तुम्हारे हाथमें नहीं दे दिया? हमारी आशा यहाँ नहीं है मेहर, हमारी आशा और भरोसा (ऊपरकी ओर देखकर) वहाँ है।

मानसिंहकी भगिनी, जहाँगीरकी हिन्दू महिषी रेवाका चरित्र द्विजेन्द्रलालकी अपूर्व सृष्टि है। सबसे पहले हम ‘ राणा प्रतापसिंह ’ नाटकमें रेवाका दर्शन करते हैं। उक्त नाटकके प्रथम अकके पंचम दृश्यमें नाट्यकारकी अमर लेखनीकी कितनी ही रेखाओंसे रेवाका चित्र ऐसा सुन्दर और उज्ज्वल बन गया है कि वैसा चरित्र विकास चाहे जिस सर्वोत्तम नाट्य-शिल्पीकी श्लाघाके योग्य होकर अभिनन्दित हो सकता है। ‘ नूरजहाँ ’ नाटकमें रेवा-चरित्रका वह रेखा-चित्र चित्तहारी वर्णोंके संपातसे और भी उज्ज्वल भावसे विकसित हो उठा है। पहलेहीसे, विशेषकर द्वितीय अकके पंचम दृश्यमें, हम रेवाके चरित्रका महिमामय स्वातंत्र्य हृदयंगम करके विस्मित और विमुग्ध हो जाते हैं। नाटकमें सर्वत्र ही रेवा-चरित्रका वह गौरव और तेजोमय माधुर्य दैदीप्यमान है।

—नवकृष्ण घोष

भूमिका

मेरे लिखे हुए अन्य ऐतिहासिक नाटकोंसे नूरजहाँ नाटकमें कई विशेषतायें हैं। पहली विशेषता यह है कि मैंने इस नाटकमें देव-चरित्र अंकित करनेकी चेष्टा नहीं की किन्तु दोषगुणसमन्वित मनुष्य-चरित्र अंकित करनेका प्रयत्न किया है। दूसरी विशेषता यह है कि इस नाटकमें बाहरके युद्धकी अपेक्षा भीतरका युद्ध दिखलानेमें ही मैं अधिक प्रयत्नशील रहा हूँ। ऐसा नहीं है कि पहले मैंने इस प्रकारका प्रयत्न किया ही नहीं, नहीं, किया है। अहल्या, सूर्यमल्ल, शक्त-सिंह, मेहरुन्निसा (=अकबरकी कन्या) और औरंगजेब आदि पात्रोंके चरित्रोंमें यह अन्तर्युद्ध थोड़ा-बहुत अवश्य दिखलाया गया है; परन्तु नूरजहाँमें उसे दिखानेका जितना प्रयत्न किया है उतना पहले कभी नहीं किया। नूरजहाँके मनके ऊपरसे होकर प्रवृत्तियोंकी एकके बाद एक लहर चली जाती है: पाँच-छह प्रकारके भावोंने आकर उसपर क्रमसे अधिकार किया है। इसीसे उसका चरित्र विशेष जटिल और दुर्बोध हो गया है। तीसरी विशेषता यह है कि मैंने इस नाटकमें दूसरे किसी व्यक्तिके सामने किसीसे भी 'स्वगत' भाषण नहीं कराया है। एक आदमीका इस तरह जोरसे कहना, जिसे कि सारे श्रोता तो सुन सकें केवल उसके पास खड़े हुए नट-नटी नहीं सुनें, मुझे तो एक तरहसे हास्यकर ही मालूम होता है।

—द्विजेन्द्रलाल राय
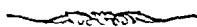
नूरजहाँ

पहला अंक

पहला दृश्य

[स्थान—बर्दवानमें दामोदर नदके किनारे शेरखाँके घरसे मिला हुआ बाग। बाग बड़े यत्नसे सुरक्षित है। केतकी, कदम्ब आदिके फूल चारों ओर खिले हुए हैं। सामने भादोंके महीनेका बढ़ा हुआ दामोदर प्रबल वेगसे बह रहा है। सूर्यदेव अभी अस्त नहीं हुए हैं। उनकी सुनहली किरणें नदकी छाती और दोनों किनारोंपर पड़ रही हैं।

शेरखाँ अपनी स्त्री नूरजहाँके साथ (उस समय 'नूरजहाँ' नाम नहीं पड़ा था, नूरजहाँका नाम 'मेहरुन्निसा' था,) उसी नदके किनारे एक चबूतरेपर बैठे हुए हैं। उनकी कन्या लैला और नूरजहाँके भाई आसफकी कन्या खदीजा एक गाना गा रही है। उसे शेरखाँ अपनी स्त्रीके साथ एकाग्र मनसे सुन रहे हैं।]

धनाश्री

सुन्दर सुरधाम-सदृश शोभा अधिकाई।
तुलना नहिं विश्व बीच तेरी लखि पाई॥ सु०॥
मोहत मन देश-रत्न, श्यामलता छाई।
अप्सरा विहार करैं मानौ इत आई॥ सुन्दर०॥
शीतल शत घने कुंज कुसुमित सुखदाई।
भाँति भाँति चहक रही चिड़ियाँ मनभाई॥ सुन्दर०॥

झरनन झनकार उठी मन्द मन्द मार लाई ।
डोलत मृदु मलय-पवन निशि भरि सुहाई ॥ सुन्दर० ॥
उपवन-वन नीप भरी सौरभ सरसाई ।
गान-तान रूपराशि चार ओर छाई ॥ सुन्दर० ॥
हा हा जगरानी अभाग आज देखो ।
एहो हतभागिनी अनन्द कौन लेखो ॥ सुन्दर० ॥
दुर्दशा भुलाय भरो, बन्धन बिसराई ।
हँसो हँसो हँसो, नहिं होय जग हँसाई ॥ सुन्दर० ॥

शेरखाँ—बहुत सुन्दर गीत है ! जाओ, अब तुम दोनों जाकर खेलो । (दोनों बालिकायें चली जाती हैं ।)

नूरजहाँ—यह कैसा सुन्दर देश है ! इसके लो-लोने खेत,—जिनके ऊपरसे श्यामलताकी लहर लहराती जाती है; इसके नद-नदी,—जिनकी अथाह जलराशि जैसे उनके भीतर समाती ही नहीं, इसके निकुंज-वन, जिनमें छाया, सुगन्ध और संगीत जैसे परस्पर लिपटे हुए सो रहे हैं ! सारा देश जैसे एक अलौकिक स्वर्गीय सुखका स्वप्न देख रहा है ।

शेर०—ईश्वरने यहाँ रहनेवालोंको ऐसा सुन्दर देश दिया है, मगर रक्षा करनेकी शक्ति नहीं दी ।

नूर०—ना प्रियतम, मुझे जान पड़ता है, इनके इतने सुखको दैव सह नहीं सका । शायद किसीके भी इतने सुखको दैव नहीं सह सकता ।

शेर०—नहीं मेहर, इस देशका यह उपजाऊ सौन्दर्य ही इसके लिए काल हो गया । इस भूमिने बहुत अधिक आदर-प्यारसे ही अपनी सन्तानोंका सर्वनाश कर डाला । आदर-प्यार अच्छी चीज़ है । वह वर्षाकी

शेर०—जाऊँगा क्यों नहीं ?

नूर०—मै कहती हूँ, मत जाना।—खबरदार !

शेर०—इतनी उत्तेजित क्यों हो रही हो ? यह तो बड़े आनन्दकी बात है।

नूर०—मेरी बात सुनो,—कहती हूँ, मत जाओ,—सावधान !

(इतना कहकर तेजीसे चली जाती है।)

शेर०—आश्चर्य ! मेहर एकाएक इतनी उत्तेजित क्यों हो उठी ! कभी कभी मेहर विचलित अवश्य हो उठती है; लेकिन, उसे इतना अधिक विचलित होते तो कभी नहीं देखा !

दूसरा दृश्य

स्थान—आगरेमें सम्राट् जहाँगीरके महलका अन्तःपुर

समय—तीसरा प्रहर

[सम्राट् जहाँगीर और सम्राज्ञी रेवा दोनों खड़े हुए बातचीत कर रहे हैं। रेवा श्वेत वस्त्र पहने है। उसने उसी समय स्नान किया है। उसके बाल खुले हुए हैं। हाथमें पूजाका पात्र है।]

रेवा—सच कहो।

जहाँ०—मैं सच कहता हूँ रेवा, शेरखाँ मेरे होशियार खजाची [illegible] दामाद है और शेरखाँ खुद एक खास आदमी है। उसे [illegible] योग्य पद देनेके लिए मैंने आगरे बुला भेजा है।

रेवा—उसकी स्त्रीके ऊपर तुम्हारी तनिक भी दृष्टि नहीं है ?—तनिक भी आसक्ति नहीं है ?—तनिक भी ?—सोचकर देखो।

जहाँ०—मैं अपने हृदयके भीतर जहाँतक देख पाता हूँ, वहाँ तक मुझे कोई गूढ़ प्रयोजन नहीं देख पड़ता।—तुम अपने मनमें नाहक खिन्न होती हो।

खुसरू—(पैर छूकर) कसम खाता हूँ, विद्रोह नहीं करूँगा।

(खुसरूका प्रस्थान)

रेवा—माताको इतना सुख! भगवन्, सन्तानके भलेकी कामना करके ही माताको इतना सुख होता है।

तीसरा दृश्य

स्थान—मैदान

समय—जाड़ेकी ऋतुका प्रातःकाल

[पुरवासी लोक सबेरे धूपमें बैठे हुए बातें कर रहे हैं।]

१ पुरवासी—तुमने शेरखाँको देखा है?

२ पुर०—मैं पहलेसे ही उन्हें जानता हूँ। इधर आगरेमें जबसे आये है तबसे भी दो-तीन बार देख चुका हूँ।

३ पुर०—(गर्वके साथ) मेरी उनके साथ बहुत दिनोंकी जान-पहचान है।

१ पुर०—आगरमें वे कब आये?

२ पुर०—यही कोई एक महीनेके लगभग हुआ।

१ पुर०—देखनेमे कैसे हैं?

२ पुर०—देखनेमे वे एक छोटे-मोटे पहाड़की तरह हैं।

३ पुर०—बाप रे! कैसा डीलडौल है! छाता जैसे एक मैदान है!

१ पुर०—नहीं तो खाली हाथ बाघके साथ कैसे लड़ते?

२ पुर०—हथियार लेकर भी बाघके साथ कितने आदमी लड़ सकते है?

४ पुर०—लेकिन मुझे जान पड़ता है, यह बात सच नहीं है।

२ पुर०—यह क्या कहता है!

५ पुर०—तुम्हारा नाम ?

४ पुर०—कादिरबेग ।

५ पुर०—तुमने कैसे जाना ?

४ पुर०—मेरे बापने यह नाम रक्खा था ।

५ पुर०—रखते देखा है ? याद है ?

४ पुर०—नहीं । पर लोग मुझे इसी नामसे पुकारते हैं ।

५ पुर०—तो यह सुनी बात है ।—तुम्हारा नाम, मैं कहता हूँ, 'कादिरबेग' नहीं है ।

१ पुर०—क्यों ?

३ पुर०—अबकी है सयाने सयानेका सामना । आओ तो भैया, हमें मूर्ख समझकर सारी विद्या जाहिर कर रहे थे ।—अब ।

२ पुर०—करो, करो—जिरह करो ।

५ पुर०—अच्छा, तुम्हारे बापका नाम क्या है ?

४ पुर०—जालिमबेग ।

५ पुर०—यह भी सुनी बात है ।

४ पुर०—कैसे ?

५ पुर०—तुम्हारे बाप जालिमबेग थे, यह तुमने कैसे जाना ?—सुनी बात है । क्यों, सुनी बात है या नहीं ?

४ पुर०—हाँ,—इसे एक तरहसे सुनी बात ही कहनी चाहिए।

५ पुर०—बस, तुम्हारे बाप जालिमबेग नहीं थे ।

(पहला, दूसरा और तीसरा,—तीनों पुरवासी उत्साहसे 'शाबाश, शाबाश' कहकर उछल पड़ते हैं ।)

१ पुर०—करो, जिरह करो,—करो बेटासे जिरह ।

४ पुर०—अच्छा, अगर मेरा बाप जालिमबेग नहीं तो कौन है ?

५ पुर०—सो मैं क्या जानूँ। तुम्हारा बाप रघुनाथ तिवारी या रामसिंह राठोर होगा।

४ पुर०—(क्रोधके स्वरमें) यह क्या! मैं हूँ कादिरबेग और मेरा बाप है रघुनाथ तिवारी या रामसिंह राठौर!

५ पुर०—तुम कादिरबेग नहीं हो।

४ पुर०—मैं कादिरबेग नहीं हूँ,—तो मै कौन हूँ!

५ पुर०—तुम शिवनाथ हो।

४ पुर०—हूँ! मै शिवनाथ हूं!—देखो, मै कैसा शिवनाथ हूँ! (पाँचवे पुरवासीको पकड़कर मारने लगता है।)

५ पुर०—अरे छोड़ो छोड़ो! ओः बापरे! छोड़ो,—देखो तुम लोग—

४ पुर०—क्यो, मै कादिरबेग नहीं हूं!

५ पुर०—हाँ हाँ, तुम कादिरबेग हो, तुम्हारे बाप कादिरबेग हैं, तुम्हारी चौदह पीढ़ी कादिरबेग है।

४ पुर०—और मेरे बाप!

५ पुर०—कह तो चुका कि कादिरबेग।

४ पुर०—मै भी कादिरबेग और मेरे बाप भी कादिरबेग! यह भी कहीं हो सकता है! नहीं, मेरे बाप जालिमबेग हैं।

५ पुर०—अच्छा!—तुम्हारे बाप जालिमबेग हैं, इससे ही अगर तुम खुश हो, तो मै मान लेता हूं कि तुम्हारे बाप जालिमबेग हैं।

४ पुर०—(उसे छोड़कर) तू मेरे बाप-दादेमे गड़बड़ डालनेवाला था! पाजी!

५ पुर०—अब मै हार गया।

१ पुर०—कैसे हार गये! मार खाकर—

मेरे सामने जब कहा कि—" शेरखाँ शेरसे लड़कर जीता है, इसमें मैं खुश जरूर हुआ। लेकिन अगर शेर जीतता, तो और भी खुश होता।"—हा! उसका अर्थ मैं बहुत पहलीवार समझ गया!—बादशाह मेरे ऊपर कैसे खुश होंगे! ओः!—कैसे खुश होंगे!

चौथा दृश्य

स्थान—आगरेमें शेरखाँका घर

[दोमंजिलेपर नूरजहाँ और उसकी एक सखी]

नूर०—उस दिन सम्राट् भीड़-भाड़के साथ सड़कपर शिकारसे लौटे आ रहे थे। भीड़मेंसे कोई कोई 'शाबास शेरखाँ' कहकर चिल्ला रहा था। मैं भी कुतूहलके कारण देखनेके लिए खिड़कीके पास चली गई।

सखी—फिर?

नूर०—जाकर देखा, खूब भीड़-भाड़ है। सम्राट् घोड़ेपर चढ़े उस भीड़के बीचमें हैं। उन्होंने एकाएक ऊपरकी ओर आँख उठाकर देखा, तो मेरी और उनकी चार आँखें हो गईं। मुझे जान पड़ा, सम्राट्का मुख उज्ज्वल हो उठा है। मेरी नस-नसमें गर्म खून चक्कर मारने लगा। मैं क्रोध, क्षोभ और लज्जाके मारे कट गई। उसके बाद ही मेरे स्वामी घर आये। उनके शरीरमें बहुतसे घाव थे। मुझे देखकर उन्होंने पूछा—क्या हुआ मेहर? मुझे उनका वह पूछना भिड़कीसे भी कड़ा मालूम पड़ा।

सखी—तुम जब सम्राट्को पहलेहीसे चाहती थीं, तो तुम्हें शेरखाँसे ब्याह नहीं करना था।

[illegible]—[illegible] कभी [illegible] निगाहसे नहीं देखा। [illegible] नहीं [illegible]। किसीसे भी नहीं [illegible]। [illegible] सुनो। [illegible] कारण यह है कि [illegible]।

[illegible]—[illegible]।

नूर०—([illegible]) [illegible]। [illegible], कहीं डाले,—सुनो। उस समय मेरा ब्याह नहीं हुआ था, लेकिन, शेरखाँसे ब्याह होनेकी बात पक्की हो गई थी। उस समय भारतके सम्राट् अकबरशाह थे। एक दिन सम्राट्के परिवारमें रातका भोजन था। भोजनके बाद जब सब मेहमान उठकर चले गये,—अन्त:पुरमें सम्राट्के परिवारके लोग ही रह गये,—तब हम कई औरतें बुर्का डालकर उन लोगोंके सामने नाचने लगीं।

सखी—क्यों ?

नूर०—तुम नहीं जानती, यह एक चाल है। जो लोग सम्राट्के बड़े ही प्रियपात्र हैं, उनकी स्त्रियाँ बुर्का डालकर कभी कभी बादशाहके यहाँ नाचती हैं।

सखी—सच !

नूर०—मेरे पिता सम्राट्के अत्यन्त प्रियपात्र होनेके कारण उस परिवारके आत्मीयोंमें ही गिने जाते थे। यद्यपि पहले उन्होंने इस तरह रातके नाचमें मेरे जानेपर आपत्ति की थी; परन्तु, मेरे बहुत अनुनय-विनय करनेपर और मेरे भाई आसफके यह कहनेपर कि मुँह ढँक कर नाचना होगा, कोई पहचान न सकेगा, मेरे पिताने मेरा जाना मंजूर कर लिया था।

सखी—(आग्रहके साथ) फिर क्या हुआ ?

सखी—[illegible] अब [illegible] लौट जाओ। नहीं तो [illegible] मिलेगी। दूर चले जानेपर फिर [illegible] मेल [illegible]।

नूर०—(ठंडी साँस लेकर) [illegible] स्वामी किसका है! [illegible], उदारता, पवित्र चरित्रमें उनके समान संसारमें कितने आदमी हैं! —[illegible] वे मेरे पिता और स्वामी हो रहे हैं।

सखी—तो [illegible] जाती हूँ बहन!

नूर०—अच्छा बहन। देखो, ये सब बातें किसीपर प्रकट न हों। तुम्हें बहुत ही अपना समझकर मैंने सब कच्चा हाल कह दिया है। किसीसे कहना मत।

सखी—नहीं।—तुम मईवानको लौट जाओ।

नूर०—चलो, तुम्हें नाचेतक पहुँचा आऊँ। (दोनों जाती हैं।)

[बातें करते हुए शेरखाँ और आयशा प्रवेश करते हैं।]

आयशा—तुम्हें खाली हाथ शेरसे लड़ानेमें मुझे कुछ सन्देह हुआ था। लेकिन आज फिर तुम्हें हाथीके पैरके नीचे कुचलवानेकी यह चेष्टा देखकर मुझे निश्चय हो गया है कि सम्राट् तुम्हें मरवा डालना चाहते हैं। मगर उनको अपने न्याय-विचारके सम्बन्धमें कुछ अभिमान है, इसीसे वे प्रकट रूपसे तुम्हारे प्राण नहीं ले सकते। यही कारण है कि वे गुप्तरूपसे चालाकीके साथ तुम्हें मरवा डालना चाहते हैं। तुमने अपने बलसे आज मस्त हाथीको मार डाला, और कोई होता तो उसकी जान जरूर जाती।

शेर०—लेकिन मेरी समझमें नहीं आता कि मेरी जान लेकर सम्राट्को क्या लाभ होगा।

[नूरजहाँका प्रवेश]

शेर०—यह तो मेहर आ गई।—कहाँ थीं!

नूर०—मुईनुद्दीनकी बीबी आई थी। उसे भेजने नीचे गई थी। अच्छा आये थे!

शेर०—हाँ। (कोमल स्वरसे) मेहर, चलो, हम लोग बर्दवान ही चलें।

नूर०—(सहसा) हाँ, अच्छी बात है। चलो चलें। कल ही चलो!

शेर०—इतना उत्तेजित क्यों होती हो मेहर! क्या हुआ है?

नूर०—कुछ नहीं,—यहाँ घड़ी-भर भी ठहरनेको मेरा जी नहीं चाहता। और कुछ नहीं. (दृढ़तासूचक स्वरमें) मैं यहाँ नहीं रहना चाहती।

शेर०—अच्छी बात है। यही होगा। शीघ्र ही बर्दवानको लौट चलूंगा। चलो, नीचे चलो। खाना तैयार होगा। चलो।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—आगरेमें सम्राट्‌का महल

समय—तीसरा प्रहर

[जहाँगीर अकेले टहल रहे हैं।]

जहाँ०—नहीं, अब मैं अपनी इच्छाको दबाकर नहीं रख सकता। उस दिनसे एक तरहका उन्माद-सा मेरे हृदयपर अधिकार कर बैठा है। मैं किसी तरह उसकी यादको अपने जीसे नहीं हटा सकता। उस दिन खिड़कीमेंसे देखा,—कैसा वह रूप था! मानों बर्फके ऊपर उषाका उदय हो. मानों सन्नाटेकी आधी रातमें ईमनकी पहली तान हो; मानो मनुष्यकी शुरू जवानीमें प्रेमका प्रभात हो!—वह एक निःसंग सुखकी तरह नहीं है, मधुर रागिनीकी तरह नहीं है, खिले हुए फूलकी तरह नहीं है।

वह मानो एक आनन्दका बाग है, सौन्दर्यकी लहरोंका कल्लोल है, महिमाका समारोह है ! वह मानो भारतका नहीं है, ईरानका नहीं है, अरबका नहीं है, भूत भविष्य या वर्तमानका नहीं है, स्वर्गका नहीं है, मनुष्य-लोकका नहीं है ! वह मानो सब देशोंका है, सब समयोंका है! स्वर्ग और मनुष्य-लोक, दोनोंके देखनेके लिए, दोनोंके बीचमें रक्खी हुई एक जुदी ही सृष्टि है !—वह मानों देवताकी प्रेरणा, कविका सफल स्वप्न, ब्रह्माण्डका विस्मय है '—कैसी वह मूर्ति है !

[इसी समय वन्दरराज आकर सम्राट्को वन्दगी करता है ।]

जहाँ०—आ गये राजासाहब ? मै इस समय आग्रहके साथ आपकी राह देख रहा था ।

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—जान पडता है, आपने अनुमान कर लिया होगा कि मैने आपको क्यों बुला भेजा है ?

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—शेरखाँ यहाँसे बंगाल चला गया है। जरूर इसी कारणसे गया है । और कोई कारण होता, तो, इसमे सन्देह नहीं कि, वह मुझसे कहकर जाता ।

राजा—खुदावन्द !

जहाँ०—तो अब छिपानेकी जरूरत नहीं है ।—मैं प्रकट रूपसे शेरखाँकी विधवाको चाहता हूँ । (पृथ्वीपर पैर पटककर) समझ गये ! (राजाने काँपते हुए अस्फुट स्वरसे सम्राट्के साथ ही साथ कहा-) खुदावन्द !

जहाँ०—डरिए नहीं । मै बहुत ही उत्तेजित हो उठा हूँ । मेरा क्रोध आपके ऊपर नहीं,—इस शेरखाँके ऊपर है । आप मेरी इच्छा प्रकट होनेके पहले ही समझ गये थे । आपपर मै प्रसन्न हूँ। अगर आप अपने

छठा दृश्य

स्थान—पाण्डुआमें शेरखाँका घर

समय—रात

[लैला गा रही है । शेरखाँ और नूरजहाँ दोनों सुन रहे हैं ।]

गीत

ठुमरी, पंजाबी ठेका

क्यों बरसत है सघन श्याम घन वर्षामहँ जल-धारा,
जो न जगावै भूमण्डलपर हास्य हर्ष सुख प्यारा ॥ क्यों० ॥
तदपि हँसे जो भूमि, हँसीका तो वह ढंग निराला ।
ऊपर हँसी, हृदयके भीतर जलती दारुण ज्वाला ॥ क्यों० ॥

नूर०—यह गीत तुमने किससे सीखा है लैला ?

लैला—मौसीसे ।

नूर०—उसने यह गाना सिखाया है ? उसकी यह दुष्टता है ।

शेर०—क्या हुआ मेहर ? इसमे अन्याय क्या हुआ ?

नूर०—सो तुम क्या समझोगे ?—खबरदार ! मेरे आगे अब यह गाना कभी न गाना । समझी लैला ?

लैला—समझ गई अम्मी ।

नूर०—जाओ, सोओ जाकर; जाओ, मैं भी आती हूँ ।

(लैला चली गई । नूरजहाँ कुछ देरतक खिड़कीसे बाहर झाँकती रहती है ।)

शेरखाँ—(धीरेसे) मेहर !

नूर०—नाथ, मै कुछ रूखी पड़ गई थी, क्षमा करो ।

शेर०—कुछ नहीं मेहर, तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है । समझ गया, तुम किसी कारणसे खीझी हुई थीं । अपने आपेसे बाहर थीं ।

(नूरजहाँ चुप रहती है ।)

शेर०—(उठकर नूरजहाँके पास जाकर, उसका हाथ पकड़कर स्नेहके स्वरमें) मेहर, कुछ न कुछ हुआ अवश्य है। तुम्हारे हृदयके भीतर कोई चिन्ता कीड़ेकी तरह घुस अवश्य गई है। वह कौन चिन्ता है प्यारी, मुझसे कहो। मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। मुझसे नहीं कहोगी?

नूर०—नाथ, मुझे कुछ भी नहीं कहना है।—सोओ नाथ, बहुत रात बीत गई है। मैं जाती हूँ,—लैला अकेली है।

(सिर झुकाये हुए धीरे धीरे नूरजहाँका प्रस्थान)

शेर०—आगरा छोड़कर जबसे पाण्डुयामें आया हूँ, तबसे मेहर और भी अस्थिर हो उठी है। बात करते करते एकाएक विचलित हो उठती है, और फिर नर्म पड़कर अनुनय करती है। मेरी मेहरको यह क्या हो गया है!—पूछनेसे कुछ उत्तर नहीं देती। मेरी सुखमय गृहस्थीमें न जाने यह क्या गड़बड़ मच गई है!—वह काहेका शब्द है? नहीं, हवाका खटका है। पाण्डुयामें आकर सुख भले ही न हो, कुछ दिनोंके लिए बेखटके तो हो गया हूँ।—रात बहुत बीत गई है। नींद आ रही है।

(शेरखाँ लेट जाता है। बहुत जल्द नींद आ जाती है। दमभर बाद कई आदमी सावधानीके साथ धीरे धीरे प्रवेश करते हैं।)

१ आदमी—(धीमे स्वरसे) सो रहा है।

२ आ०—(वैसे ही स्वरमें) मारो।

३ आ०—(वैसे ही स्वरमें) सब लोग एक साथ तलवारें खींच लो।

४ आ०—(वैसे ही स्वरमें) वार खाली न जाय।

५ आ०—(वैसे ही स्वरमें) तैयार हो? फिर देर काहेकी है? मारो।

(सब शेरखाँको मारनेके लिए आगे बढ़ते हैं।)

सरदार—(आगे आकर) नहीं । हम इतने आदमी मिलकर एक आदमी को मारेंगे,—और सो भी तब जब वह पड़ा पड़ा बेखबर सो रहा है ! नहीं, अब नहीं हो सकता,—उठने दो ।

(शेरअफ़गन की आँख खुल जाती है ।)

[illegible]

(शेरखाँ सरदारोंकी तरफ देखता है ।)

शेर०—(सरदारोंसे) अच्छा, जाओ ।

(सरदारोंका प्रस्थान)

नूर०—क्या सम्राट्की आह यहाँतक है ! कैसा अत्याचार है ! कैसी दुष्टता है ! कैसा उपद्रव है !

सातवाँ दृश्य

स्थान—अकबरकी समाधिके पासका जंगल

समय—रात

[षड्यन्त्र रचनेवाले लोग खड़े हुए मानो किसीकी राह देख रहे हैं]

१ आदमी—शाहजादा विद्रोह करना स्वीकार कर लें, तो है ।

२ आ०—कुछ विश्वास नहीं है ।

३ आ०—हाँ, उनकी बुद्धि चंचल है ।

४ आ०—मानसिंह अगर हमारे सहायक होते !

१ आ०—वह अकबरसे, उनके मरते समय, जहाँगीरके विरुद्ध कभी युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं । वह अपनी अटल प्रतिज्ञासे तनिक भी विचलित नहीं हो सकते ।

२ आ०—हम अगर अपने काममें सफलता न पा सके तो हमारा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है ।

३ आ०—वह लो, शाहज़ादा साहब आते हैं ।

[खुसरूका प्रवेश]

सब—बन्दगी शाहज़ादा साहब !

४ आ०—हम लोग बहुत देरसे आपकी राह देख रहे हैं। आपने इतनी देर क्यों की शाहज़ादा साहब?

खुसरू—सुनो, पिताने मुझपर सन्देह करना शुरू कर दिया है। मैं आज दादाकी समाधिपर फूल चढ़ानेका बहाना करके आया हूँ। तो भी मैंने देखा, मेरे पीछे जासूस लगा हुआ है।

१ आ०—चाहे जो हो। आप इस समय स्वीकार करते हैं?

खुसरू—मैंने सोचकर देखा कि पिताके विरुद्ध विद्रोह करना मेरी ताकतके बाहर है।

२ आ०—यह क्या शाहज़ादा साहब? ईंधन तैयार है। आप उसमें आग लगा दें, बस इतनी ही देर है। अब पीछे हटनेसे कहीं काम चल सकता है!

खुसरू—मैंने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की।

आ०—नहीं की? हम तो यही समझे थे।

खुसरू—और यह सब तैयारी निष्फल है। हम लोग विजय नहीं पा सकेंगे। अगर मामा मानसिंह सहायता करते—

४ आ०—सहायता करते क्या? वह तो हमारे सहायक है ही।

खुसरू—कहाँ! मुझे तो यह हाल नहीं मालूम?

४ आ०—लेकिन वे प्रकट रूपसे कुछ नहीं करेंगे। गुप्त रूपसे सहायता करेंगे।

खुसरू—करेंगे?—आप लोग निश्चित रूपसे जानते हैं?

सब—खूब अच्छी तरह जानते हैं।

खुसरू—(कुछ सोचकर)—लेकिन—

१ आ०—इस बारेमें फिर भी 'लेकिन' क्या शाहज़ादा साहब? हम लोगोंने प्रतिज्ञा की है कि जहाँगीरको सिंहासनसे उतारकर आपको बिठलावेंगे।

आठवाँ दृश्य

स्थान—बर्दवानमें शेरखाँका घर

समय—प्रातःकाल

[नूरजहाँ अकेली खड़ी हुई दामोदर नदीकी ओर देख रही है]

नूर०—(लम्बी साँस लेकर) यह वही बर्दवान है। तो भी कैसा परिवर्त्तन हो गया है! उस दिनका सुख इस समय भी याद आता है! (लम्बी साँस लेकर सिर झुकाये हुए दो चार पग आगे बढ़कर) उस चढ़ती जवानीकी चंचलताको मैंने दबा लिया था। मनको समझा दिया था कि वह बचपनका एक खयाल है। तब मैंने यह नहीं समझा था कि वह प्रवृत्ति उस समय केवल दब ही गई थी, मरी नहीं थी। चिनगारी राखसे ढकी हुई थी, बुझ नहीं गई थी। अब वह चिनगारी नया ईंधन पाकर फिर धुआँ देने लगी है। भगवन्, स्त्रीके हृदयको इतना कमज़ोर बनाया है!—इस प्रवृत्तिको क्या अब दबा नहीं सकती?

[शेरखाँका प्रवेश]

शेर०—हाँ मेहर, बंगालके सूबेदार कुतुब बर्दवान आ रहे हैं। उनकी अभ्यर्थना करनेके लिए जा रहा हूँ।

नूर०—(विस्मयके साथ) तुम उनके पास क्यों जा रहे हो?

शेर०—क्या तुमको आश्चर्य हो रहा है? वे सूबेदार हैं और मैं बर्दवानका एक इज्जतदार उमराव हूँ। उनकी अभ्यर्थना नहीं करूँगा?

नूर०—याद है पाण्डुयाकी वह रात?

शेर०—याद है मेहर।

नूर०—फिर भी जा रहे हो?

शेर०—हाँ, तब भी जा रहा हूँ।

नूर०—मैं कहती हूँ मत जाओ। अगर जाओगे, तो तुम्हारे प्राणोंपर बन आना सर्वथा सम्भव है। इसमें सन्देह नहीं कि अबकी

बार तुम्हारी हत्याकी विशेष तैयारी किये बिना सूबेदार नहीं आया है। इस बार जाओगे तो निश्चय जानो, फिर न लौटोगे।

शेर०—(रूखी हँसी हँसकर) अगर ऐसा ही हो तो तुम भारतकी राजरानी बनोगी। बुरा क्या है!

नूर०—आप यह कैसी दिल्लगी करते हैं!

शेर०—नहीं मेहर, यह दिल्लगी नहीं। यह जीवन-मरणकी समस्या है। मैं सच कहता हूं, अब मुझे जीनेके लिए कोई उत्साह नहीं है।

नूर०—यह क्या कह रहे हो नाथ!

शेर०—हो मेहर, इस तरह भागकर जान बचानेसे मरना बहुत अच्छा है। दिन-रात एक सन्देह, सकोच और शंकामे जीवन व्यतीत कर रहा हूं।—क्यो? किस अपराधसे?—एक दिन तुमने एक बात कही थी, याद है मेहर?

नूर०—क्या?

शेर०—कि इतना सुख दैव देख नहीं सकता।—हमारे सुखको भी दैव नहीं देख सका।

नूर०—(कुछ देर चुप रहकर) चलो नाथ, हम इस ईर्षापूर्ण संसारको छोड़कर भाग चले और बहुत दूरके किसी जगली गाँवमें जाकर किसानोकी तरह अपना जीवन बितावे। सम्राट् जहाँगीरकी डाह इतने नीचे उतरकर हम लोगोका पीछा न कर सकेगी।

शेर०—ना मेहर, अब न भागूँगा। अबकी विपत्तिके पास खुद जाऊँगा और उसे गले लगाऊँगा। अगर मौत होगी, मरूँगा,—सो भी तुम्हारे लिए। (गद्गद स्वरमें) तुम्हारे लिए मरनेमे भी सुख है।—और एक बात कहूँगा मेहर!—नहीं—कही डाहूँ, मै मरना ही चाहता हूँ।

आठवाँ दृश्य

स्थान—वर्दवानमें शेरखाँका घर

समय—प्रातःकाल

[नूरजहाँ अकेली खड़ी हुई दामोदर नदीकी ओर देख रही है]

नूर०—(लम्बी साँस लेकर) यह वही वर्दवान है। तो भी कैसा परिवर्त्तन हो गया है! उस दिनका सुख इस समय भी याद आता है। (लम्बी साँस लेकर सिर झुकाये हुए दो चार पग आगे बढ़कर) उस चढ़ती जवानीकी चंचलताको मैंने दबा लिया था। मनको समझा दिया था कि वह बचपनका एक खयाल है। तब मैंने यह नहीं समझा था कि वह प्रवृत्ति उस समय केवल दब ही गई थी, मरी नहीं थी। चिनगारी राखसे ढकी हुई थी, बुझ नहीं गई थी। अब वह चिनगारी नया ईंधन पाकर फिर धुआँ देने लगी है। भगवन्, स्त्रीके हृदयको इतना कमज़ोर बनाया है!—इस प्रवृत्तिको क्या अब दबा नहीं सकती?

[शेरखाँका प्रवेश]

शेर०—हाँ मेहर, बंगालके सूबेदार कुतुब वर्दवान आ रहे हैं। उनकी अभ्यर्थना करनेके लिए जा रहा हूँ।

नूर०—(विस्मयके साथ) तुम उनके पास क्यों जा रहे हो?

शेर०—क्या तुमको आश्चर्य हो रहा है? वे सूबेदार हैं और मैं वर्दवानका एक इज्जतदार उमराव हूँ। उनकी अभ्यर्थना नहीं करूँगा?

नूर०—याद है पाण्डुयाकी वह रात?

शेर०—याद है मेहर।

नूर०—फिर भी जा रहे हो?

शेर०—हाँ, तब भी जा रहा हूँ।

नूर०—मै कहती हूँ मत जाओ। अगर जाओगे, तो तुम्हारे प्राणोंपर बन आना सर्वथा संभव है। इसमे सन्देह नहीं कि अबकी

बार तुम्हारी हत्याकी विशेष तैयारी किये बिना सूबेदार नहीं आया है। इस बार जाओगे तो निश्चय जानो, फिर न लौटोगे।

शेर०—(रूखी हँसी हँसकर) अगर ऐसा ही हो तो तुम भारतकी राजरानी बनोगी। बुरा क्या है!

नूर०—आप यह कैसी दिल्लगी करते हैं!

शेर०—नहीं मेहर, यह दिल्लगी नहीं। यह जीवन-मरणकी समस्या है। मैं सच कहता हूं, अब मुझे जीनेके लिए कोई उत्साह नहीं है।

नूर०—यह क्या कह रहे हो नाथ!

शेर०—हाँ मेहर, इस तरह भागकर जान बचानेसे मरना बहुत अच्छा है। दिन-रात एक सन्देह, संकोच और शंकामें जीवन व्यतीत कर रहा हूं।—क्यों! किस अपराधसे!—एक दिन तुमने एक बात कही थी, याद है मेहर!

नूर०—क्या!

शेर०—कि इतना सुख दैव देख नहीं सकता।—हमारे सुखको भी दैव नहीं देख सका।

नूर०—(कुछ देर चुप रहकर) चलो नाथ, हम इस ईर्षापूर्ण संसारको छोड़कर भाग चलें और बहुत दूरके किसी जंगली गाँवमें जाकर किसानोंकी तरह अपना जीवन बितावें। सम्राट् जहाँगीरकी डाह इतने नीचे उतरकर हम लोगोंका पीछा न कर सकेगी।

शेर०—ना मेहर, अब न भागूंगा। अबकी विपत्तिके पास खुद जाऊँगा और उसे गले लगाऊँगा। अगर मौत होगी, मरूँगा,—सो भी तुम्हारे लिए। (गद्गद स्वरमें) तुम्हारे लिए मरनेमें भी सुख है।—और एक बात कहूँगा मेहर!—नहीं—कहाँ डाऊँ, मैं मरना ही चाहता हूँ।

आठवाँ दृश्य

स्थान—बर्दवानमें शेरखाँका घर

समय—प्रातःकाल

[नूरजहाँ अकेली खड़ी हुई दामोदर नदकी ओर देख रही है]

नूर०—(लम्बी साँस लेकर) यह वही बर्दवान है। तो भी कैसा परिवर्त्तन हो गया है! उस दिनका सुख इस समय भी याद आता है! (लम्बी साँस लेकर सिर झुकाये हुए दो-चार पग आगे बढ़कर) उस चढ़ती जवानीकी चंचलताको मैंने दबा लिया था। मनको समझा दिया था कि वह बचपनका एक खयाल है। तब मैंने यह नहीं समझा था कि वह प्रवृत्ति उस समय केवल दब ही गई थी, मरी नहीं थी। चिनगारी राखसे ढकी हुई थी, बुझ नहीं गई थी। अब वह चिनगारी नया ईंधन पाकर फिर धुआँ देने लगी है। भगवन्, स्त्रीके हृदयको इतना कमज़ोर बनाया है!—इस प्रवृत्तिको क्या अब दबा नहीं सकती?

[शेरखाँका प्रवेश]

शेर०—हाँ मेहर, बंगालके सूबेदार कुतुब बर्दबान आ रहे हैं। उनकी अभ्यर्थता करनेके लिए जा रहा हूँ।

नूर०—(विस्मयके साथ) तुम उनके पास क्यों जा रहे हो?

शेर०—क्या तुमको आश्चर्य हो रहा है? वे सूबेदार हैं और मैं बर्दबानका एक इज्जतदार उमराव हूँ। उनकी अभ्यर्थना नहीं करूँगा?

नूर०—याद है पाण्डुयाकी वह रात?

शेर०—याद है मेहर।

नूर०—फिर भी जा रहे हो?

शेर०—हाँ, तब भी जा रहा हूँ।

नूर०—मैं कहती हूँ मत जाओ। अगर जाओगे, तो तुम्हारे प्राणोंपर बन आना सर्वथा सभव है। इसमे सन्देह नहीं कि अबकी

नूर०—क्यों नाथ ?

शेर०—सुनोगी, क्यों ?—मैंने समझ लिया है, जान लिया है और हृदयमें इसका पूर्ण अनुभव कर लिया है कि अब तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।

नूर०—नहीं प्यार करती ?

शेर०—ना, मुझे तुम्हारी निगाहसे, क्षीण हँसीसे, भर्राई हुई आवाजसे और तुम्हारे इस 'नहीं प्यार करती ?' प्रश्नसे इस बातका पता लग रहा है।

(नूरजहाँ चुप रहती है)

शेर०—कहाँ तो तुम्हे जहाँगीरकी बेगम होना चाहिए था और कहाँ तुम सम्राट्के दासानुदास शेरखाँकी स्त्री हुई! कहाँ तुम आगरेके संगमर्मरके महलमें रहतीं और कहाँ इस दीन शेरखाँकी झोपडीमें पडी हुई हो! कहाँ तुम सूर्यकी तरह सारे भारतवर्षमें अपना प्रकाश फैलातीं और कहाँ इस गरीबके घरमे दीपककी तरह टिमटिमा रही हो।

नूर०—मैंने क्या कभी यह बात कही है ?

शेर०—ना, कही नहीं! तो भी मैं समझता हूँ। हो सकता है, मै मनुष्य-चरित्रको ठीक न समझ सकता हूँ, किन्तु मै प्रेमी,—प्रेमका प्यासा हूँ। पानी न मिलनेपर प्यासेको अपनी प्यास समझनेके लिए अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता। मै तुम्हारे पास सूखा हुआ तालु लेकर गया और वैसा ही लौटा।—मेहर, प्रेम केवल विश्वास और सेवा नहीं चाहता। यह प्यास भीतरकी है।

नूर०—स्वामी, मेरे देवता,—मुझे क्षमा करो।

(पैरोंपर गिर पड़ती है।)

शेर०—ना मेहर, गल्ती तुम्हारी नहीं मेरी है। जिससे ब्याह करनेके लिए शाहजादा,—भारतका भावी सम्राट् पागल हो रहा था, उससे मुझ दीन-दरिद्र शेरखोंका ब्याह करना आगमें पतंगका फाँदना नहीं तो और क्या था? मैंने सोचकर देखा है, गल्ती मेरी ही थी।

नूर०—गल्ती तुम्हारी थी?

शेर०—हाँ, गल्ती मेरी थी। तो भी मेहर, तुम मुझे दोष न देना और सोचकर देखना कि वह कैसा प्रलोभन था! हे सुन्दरी, जिस दिन तुम मेरी उद्भ्रान्त दृष्टिके आगे उदय हुई, जब मेरी उन्मुख वासनाके बीचसे तुमने अपने रूपका रथ चला दिया, जब जीवनका ध्यान शरीरधारी होकर मुझे अपने जागते हुए स्वप्नमे आकर दिखाई दिया, तब मैं अपनेको नहीं सँभाल सका! क्योंकि मै मनुष्य हूँ!—दुर्बल मनुष्यमात्र हूँ! और वह मेरी शुरू जवानी थी, मेहर!—शुरू जवानी थी! जब आकाश बहुत ही नीला देख पड़ता है, पृथ्वी बहुत ही हरी-भरी जान पड़ती है; जब ये नक्षत्र वासनाकी चिनगारियो जैसे और गुलाबके फूल हृदयके रक्त जैसे जान पड़ते हैं, जब कोकिलका गान एक स्मृति-सा और मलय-पवन एक स्वप्न-सा जान पड़ता है; जब प्रणयीका दर्शन उषाका उदय, चुम्बन स-जला बिजलीकी चमक और आलिङ्गन आत्माका प्रलय जान पड़ता है!—उसी जवानीमे मैंने तुम्हारे रूपकी मदिरा पी!—नहीं जानता था कि मै विष पान कर रहा हूँ!—मेहर, (हाथ पकड़कर) दरवाजा बंद करो, मैं जाता हूँ। (चुंबन) अगर लौटकर न आ सका तो यही आखरी मुलाकात है!—बस विदा! (शीघ्र प्रस्थान)

नूर०—ओः! (क्षण-भर बाद) स्वामी, अगर भक्ति प्रेमकी शून्यताको पूरा कर सकती, तो मै वह भक्ति तुम्हारे पैरोंमें अर्पण कर देती। (प्रस्थान)

नवाँ दृश्य

स्थान—बर्दवानकी राह

समय—दिनके तीन बजे

[बंगालका सूबेदार कुतुब, उसके मंत्री और सैनिक खड़े खड़े बातचीत कर रहे हैं।]

कुतुब—(दूरपर दृष्टि डालता हुआ) वह शेरखाँ आ रहा है न ?

मंत्री—हाँ जनाब ।

कुतुब—(सैनिकोंसे) सिपाहियो, तुम सब तैयार हो ?

सिपाही—हाँ हुजूर ।

कुतुब—अगर काम पूरा हो गया, तो क्या पुरस्कार मिलेगा और अगर किसीने पीछे पैर हटाया तो क्या दण्ड दिया जायगा ?—याद है ?

सिपाही—याद है ।

कुतुब—बस, चुपचाप खडे रहो। मेरी आज्ञाकी राह देखते रहो। याद रहे कि वह और कोई नहीं, शेरखाँ है ।

(शेरखाँ आकर बदगी करता है ।)

कुतुब—(बदगीका जवाब देकर) आइए, आप कुशलसे तो हैं ?

शेर०—हाँ जनाब ।

कुतुब—परिवारमे सब कुशल है ?

शेर०—हाँ जनाब ।

कुतुब—बर्दवानमें इस समय कोई बीमारी या किसी तरहकी अशान्ति तो नहीं है ?

शेर०—विशेष कुछ नहीं ।

कुतुब—यहाँ आपको कुछ कष्ट तो नहीं है?

शेर०—कुछ नहीं।

कुतुब—मैं बर्दवानमें पहले कभी नहीं आया था।—बहुत अच्छा शहर है।

शेर०—हाँ, बहुत अच्छा है।

कुतुब—तो अब आप अपने घोड़ेपर चढ़िए। मैं हाथीपर चढ़ूँगा। धूमधामके साथ नगरके भीतर प्रवेश करना होगा।

शेर०—जो आज्ञा।

कुतुब—तो चलिए।

(कुतुब और शेरखाँका प्रस्थान। पीछेसे मंत्री जाते हैं। दो-चार अनुचर पीछे रह देखते हैं।)

कुतुब—(दमभर बाद नेपथ्यमें) सिपाहियो!

शेर०—(नेपथ्यमें) कुतुब, यह मैं पहलेहीसे जानता था। आज मरनेहीके लिए आया हूँ। मगर अकेले नहीं मरूँगा, पहले तुम आओ।

(नेपथ्यमें शस्त्रोंकी झनकार, बन्दूकोंकी आवाज, आर्त्तनाद और मनुष्योंका कोलाहल। युद्ध करते करते शेरखाँ और सिपाही फिर प्रवेश करते हैं और पाँच-छः सिपाही शेरखाँके मारसे पृथ्वीपर लोट जाते हैं।)

शेर०—(ऊँचे स्वरसे) बस, अब नहीं, मैं हथियार रक्खे देता हूँ। मैं मरनेके लिए तैयार हूँ। तुम अगर मुसल्मान हो तो मरनेसे पहले मुझे ईश्वरसे प्रार्थना करनेके लिए थोड़ा-सा समय दो।

(सब ठहर जाते हैं।)

शेर०—तुम्हारा सूबेदार कुतुब मरा पड़ा है। तुम क्षुद्र जीव हो, तुमको मारनेसे कोई फायदा नहीं। अगर इस समय रूप सम्राट्

नवाँ दृश्य

स्थान—बर्दवानकी राह

समय—दिनके तीन बजे

[बंगालका सूबेदार कुतुब, उसके मंत्री और सैनिक खड़े खड़े बातचीत कर रहे हैं ।]

कुतुब—(दूरपर दृष्टि डालता हुआ) वह शेरखाँ आ रहा है न ?

मंत्री—हाँ जनाब ।

कुतुब—(सैनिकोंसे) सिपाहियो, तुम सब तैयार हो ?

सिपाही—हाँ हुजूर ।

कुतुब—अगर काम पूरा हो गया, तो क्या पुरस्कार मिलेगा और अगर किसीने पीछे पैर हटाया तो क्या दण्ड दिया जायगा ?—याद है ?

सिपाही—याद है ।

कुतुब—बस, चुपचाप खड़े रहो । मेरी आज्ञाकी राह देखते रहो। याद रहे कि वह और कोई नहीं, शेरखाँ है ।

(शेरखाँ आकर बंदगी करता है ।)

कुतुब—(बंदगीका जवाब देकर) आइए, आप कुशलसे तो हैं ?

शेर०—हाँ जनाब ।

कुतुब—परिवारमे सब कुशल है ?

शेर०—हाँ जनाब ।

कुतुब—बर्दवानमें इस समय कोई बीमारी या किसी तरहकी अशान्ति तो नहीं है ?

शेर०—विशेष कुछ नहीं ।

४ मु०—यह देखो इस तरह हँस रहा है जैसे किसी बड़े भारी मकबरेमेंसे आवाज़ आ रही है।—उसमें मेहरुन्निसाकी क्या बात हुई राजा?

२ मु०—सुना है, विवाह नहीं हुआ है।

१ मु०—लेकिन यह कुछ आश्चर्य-सा जान पड़ता है, कि उसको लाये दो साल हो गये, पर सम्राट्ने उसका मुँहतक नहीं देखा।

राजा—बादशाह अपने मित्रकी मृत्युसे इतने दुःखी हुए हैं कि उन्होंने उसकी विधवाका मुँह न देखनेका प्रण कर लिया है।

३ मु०—सम्राट्ने विधवाके पतिकी हत्या कराकर, उसे आगरेमें लाकर, महलके भीतर, पहरेमें रक्खा है उसका मुँह न देखनेके इरादेसे,—क्यों?

२ मु०—बल्कि मैने तो सुना है, विधवाने ही सम्राट्का मुँह न देखनेका प्रण कर रक्खा है।

१ मु०—यही सम्भव है। पतिकी हत्या करनेवालेपर कहीं किसी स्त्रीका अनुराग हो सकता है?

३ मु०—नहीं। अनुराग न होकर विशेष 'राग' (=क्रोध) होनेकी सम्भावना ही अधिक है।

१ मु०—लेकिन फिर 'राग' के पहले एक 'अनु' के आनेमें क्या देर लगती है? 'राग' के 'पीछे' जो आता है, वही तो 'अनुराग' है!

२ मु०—तो अभीतक यह 'अनु' नहीं आया। मैने यह खबर आयशाख़ाँके मुँहसे सुनी है और यही सच्ची है।

[वेगसे आसफका प्रवेश]

आसफ—एक खबर सुनी है?

सब—क्या? क्या?

आसफ—शाहज़ादा खुसरूने दिल्लीको घेरा था, पर उसमें वे सफल न हुए और लाहौरकी तरफ भाग गये। सेना लेकर फरीदने उनका

(राजा सिर झुकाये हुए चले जाते हैं।)

४ मु०—वह देखो, किस तरह कुत्तेकी तरह दुम हिलाता चला गया! (तीसरे मुसाहबसे) देखा?

२ मु०—देखा, वह शीघ्र ही 'महाराजा' होगा।

४ मु०—क्यों?

१ मु०—जो लोग कुत्तेकी तरह दुम हिलानेकी क्रिया जानते हैं, वे एक न एक दिन 'महाराजा' अवश्य हो जाते हैं।

(तीसरा मुसाहब सिर हिलाकर अपनी सम्मति जताता है।)

१ मु०—शास्त्रमें यह बात लिखी है।

४ मु०—चलो, हम लोग भी चलें। दरबारका वक्त टला जा रहा है।

(आयशा और आसफके सिवा सब चले जाते हैं।)

आयशा—(धीरेसे) आसफ!

आसफ—अब्बा!

आयशा—सम्राट्‌ने मुझे फिर बुला भेजा था। उन्होंने मुझे बहुत-सा प्रलोभन दिखाकर कहा,—अगर तुम अपनी बेटीको राजी कर सको तो मैं तुम्हें मन्त्री बना दूँगा।

आसफ—आपने क्या जवाब दिया?

आयशा—मैंने कहा, जहाँपनाहकी अनुमति हो तो मैं खजाञ्चीके कामसे इस्तीफा दे दूँ।

आसफ—तब सम्राट्‌ने क्या कहा?

आयशा—नाराज़ होकर कहा,—अच्छा, देखा जायगा।—आसफ, मैं यह पद छोड़नेके लिए तैयार हूँ। तुम भी आगरा छोड़नेके लिए तैयार हो जाओ।

जहाँ०—मैं उन्हीं लोगोंके नाम जानना चाहता हूँ। खुसरू, बतला दो कि वे लोग कौन हैं? जवाब दो, चुप हो रहनेसे मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। उन्हें आगके कुण्डमें डालूँगा। उन्हें शेरको खिलाऊँगा। बताओ, वे कौन हैं?

खुसरू—अच्छा, मैं उनके नाम नहीं बताऊँगा।

जहाँ०—नहीं बतावेगा?—कुलांगार, तुझे बताना पड़ेगा। मैं तुझसे कहलाऊँगा। मैं तुझे यन्त्रणाके यन्त्रपर चढ़ाऊँगा। कोड़ोंकी मारसे तेरी पीठकी खाल खिंचवा लूँगा। अगर तू सोचता है कि मैं अपना पुत्र समझकर तुझे माफ कर दूँगा तो तू मुझे नहीं पहचानता। —अब भी उनके नाम बता दे।

खुसरू—मुझे जो चाहे सजा दीजिए। उनके नाम मेरी जबानसे नहीं निकल सकते। जो जी चाहे, कीजिए।

जहाँ०—जो जी चाहे करूँ? अच्छा तो वही सही। पहरेदार, इसे कैदखानेमें ले जा।—अब्दुल, देखो, इसके हाथ-पैर लोहेके खंभेसे बाँधकर इसे दिन-भर खड़ा रक्खो। पीठपर कोड़े मारो।—खुसरू, मैं तुम्हारे साहसको और तुम्हारी सहनशीलताको जानता हूँ। —जाओ, ले जाओ।—क्या, रो रहे हो? उनके नाम बताओगे?

खुसरू—नहीं।

जहाँ०—ले जाओ।

(सिपाही खुसरूको ले जानेके लिए उद्यत होते हैं।)

महाबतखाँ—(आगे बढ़कर) जहाँपनाह, मेरी एक अर्ज़ है। (सिपाहियोंसे) ठहरो।

जहाँ०—क्या चाहते हो महाबतखाँ?

महा०—आजतक मैंने जहाँपनाहकी आज्ञाका प्रतिवाद नहीं किया,—आज करता हूँ। उसे अनुग्रह करके सुन लीजिए और फिर चाहे जो आज्ञा दीजिए।

जहाँ०—मैं उन्हीं लोगोंके नाम जानना चाहता हूँ। खुसरू, बतला दो कि वे लोग कौन हैं? जवाब दो, चुप हो रहनेसे मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। उन्हें आगके कुएँमें डालूँगा। उन्हें शेरको खिलाऊँगा। बताओ, वे कौन हैं?

खुसरू—अच्छा, मैं उनके नाम नहीं बताऊँगा।

जहाँ०—नहीं बतायेगा!—कुलांगार, तुझे बताना पड़ेगा। मैं तुझसे कहलाऊँगा। मैं तुझे यन्त्रणाके यन्त्रपर चढ़ाऊँगा। कोड़ोंकी मारसे तेरी पीठकी खाल खिंचवा लूँगा। अगर तू सोचता है कि मैं अपना पुत्र समझकर तुझे माफ़ कर दूँगा तो तू मुझे नहीं पहचानता।—अब भी उनके नाम बता दे।

खुसरू—मुझे जो चाहे सजा दीजिए। उनके नाम मेरी ज़बानसे नहीं निकल सकते। जो जी चाहे, कीजिए।

जहाँ०—जो जी चाहे करूँ? अच्छा तो यही सही। पहरेदार, इसे कैदखानेमें ले जा।—अब्दुल, देखो, इसके हाथ-पैर लोहेके खंभेमें बाँधकर इसे दिन-भर खड़ा रक्खो। पीठपर कोड़े मारो।—खुसरू, मैं तुम्हारे साहसको और तुम्हारी सहनशीलताको जानता हूँ।—जाओ, ले जाओ।—क्या, रो रहे हो? उनके नाम बताओगे?

खुसरू—नहीं।

जहाँ०—ले जाओ।

(सिपाही खुसरूको ले जानेके लिए उद्यत होते हैं।)

महाबतखाँ—(आगे बढ़कर) जहाँपनाह, मेरी एक अर्ज़ है। (सिपाहियोंसे) ठहरो।

जहाँ०—क्या चाहते हो महाबतखाँ?

महा०—आजतक मैंने जहाँपनाहकी आज्ञाका प्रतिवाद नहीं किया,—आज करता हूँ। उसे अनुग्रह करके सुन लीजिए और फिर चाहे जो आज्ञा दीजिए।

आसफ—विचार करके देखिए, जहाँपनाह, जब इसके साजिश करनेवाले जहाँपनाहकी हत्या करनेके लिए कोशिश कर रहे थे, तब इन्होंने उस प्रस्तावको नामंजूर कर दिया था। और आज यह उनकी कायर साजिश करनेवालोंके नाम न बताकर उनको जो सजा मिलनी चाहिए सो अपने ही सिर लिये लेते हैं, इससे भी इनका महत्त्व ही प्रकट होता है।

जहाँ०—किन्तु उनके नाम जाननेकी मुझे जरूरत है।

आसफ—उनके नामोंका पता लगानेका काम मेरे जिम्मे रहा।

जहाँ०—अच्छा सिपाहियो, शाहजादेको कैदखानेमें ले जाओ। सजाके बारेमें फिर सोचा जायगा।

(खुसरूको लेकर पहरेदारोंका प्रस्थान)

जहाँ०—परवेज़, तुम मेवाड़के युद्धमें हार आये। मुझे मालूम न था कि तुम इतने निकम्मे हो। महाबतखाँ, अबकी तुम मेवाड़पर चढ़ाई करो और परवेज, तुम महाबतखाँके साथ जाओ। युद्ध किसे कहते हैं, जाकर सीखो।

परवेज—जो हुक्म अब्बा।

जहाँ०—और खुर्रम, अबकी तुम्हें दक्खनके युद्धमें जाना होगा, जानते हो?

खुर्रम—जानता हूँ अब्बा।

जहाँ०—शहरयार, तुम यहाँ कहाँ!—हकीम आये थे?

शहर०—आये थे।

जहाँ०—क्या कह गये?

शहर०—दवा दे गये है।

जहाँ०—अच्छा, वहीं जाकर खाओ। यहाँ क्यो आये हो? अन्तःपुरमें जाओ।

[दूसरी ओरसे महाबतखाँ और अन्यान्य सभासद जाते हैं। परवेज़, शाहजहाँ (खुर्रम) और शहरयार रह जाते हैं।]

शाह०—सच बात है। भाई, तुम मेवाड़मे क्या उलटी तलवार लेकर लड़े थे?

परवेज—युद्ध जैसे किया जाता है, वैसे ही किया था। लेकिन वह देश अपरिचित था। फिर जिस दिन युद्ध हुआ, उस दिन हम युद्धके लिए तैयार नहीं थे।

शाह०—तुम शायद तमाखू पी रहे थे।

परवेज—तुम्हारा खयाल ठीक है खुर्रम, तमाखू ही पी रहा था। आगरेसे एक पेटी तमाखूकी ले गया था।

शाह०—भाई, तुमने यही भूल की। तमाखू, तकिया और औरत,—ये तीन चीजे कभी युद्धके मैदानमे न ले जाना चाहिए। आराम और युद्ध, तेल और पानीकी तरह बिलकुल ही मेल नहीं खाते।

शहर०—आश्चर्य है! तुम लोगोके पास क्या युद्धके सिवा और कोई बात ही नहीं है? यह जगत् क्या एक हत्या-शाला है? पृथ्वी कैसी हरी-भरी है; पक्षियोके बोल सुनो, नदीके जलका कलरव सुनो। इस संपूर्ण विश्वकी सुषमाका हृदयसे अनुभव करो।—

शाह०—शहरयार, बुराई जितनी ढकी रहे, उतनी ही अच्छी। इसी तरह तुम जितना कम बोलो, उतना ही अच्छा। तुम चुप रहो।

शहर०—तुम्हीं-ऐसे लोगोंने मिलकर ही तो ऐसे सुन्दर जगतको कुत्सित बना रक्खा है! (प्रस्थान)

आयश—विचार करके देखिए जहाँपनाह, जब इन्हें शामिल करनेवाले जहाँपनाहकी हत्या करनेके लिए कोशिश कर रहे थे, तब इन्होंने उस प्रस्तावको नामंजूर कर दिया था। और आज तक उन्हीं कायर साजिश करनेवालोंके नाम न बताकर उनको जो सजा मिलनी चाहिए सो अपने ही सिर लिये लेते हैं, इससे भी इनका मतलब ही प्रकट होता है।

जहाँ०—किन्तु उनके नाम जाननेकी मुझे जरूरत है।

आयश—उनके नामोंका पता लगानेका काम मेरे जिम्मे रहा।

जहाँ०—अच्छा सिपाहियो, शाहजादेको कैदखानेमें ले जाओ। सजाके बारेमें फिर सोचा जायगा।

(खुसरूको लेकर पहरदारोंका प्रस्थान)

जहाँ०—परवेज, तुम मेवाड़के युद्धमें हार आये। मुझे मालूम न था कि तुम इतने निकम्मे हो। महावतखाँ, अबकी तुम मेवाड़पर चढ़ाई करो और परवेज, तुम महावतखाँके साथ जाओ। युद्ध किसे कहते हैं, जाकर सीखो।

परवेज—जो हुक्म अब्बा।

जहाँ०—और खुर्रम, अबकी तुम्हें दक्खनके युद्धमें जाना होगा जानते हो?

खुर्रम—जानता हूँ अब्बा।

जहाँ०—शहरयार, तुम यहाँ कहाँ!—हकीम आये थे?

शहर०—आये थे।

जहाँ०—क्या कह गये?

शहर०—दवा दे गये हैं।

जहाँ०—अच्छा, वहीं जाकर रखो। यहाँ क्यों आये हो? अन्तःपुरमें जाओ।

[दूसरी ओरसे महावतखाँ और अन्यान्य समासद जाते हैं। परवेज, शाहजादा (खुर्रम) और शहरयार रह जाते हैं।]

शाह०—सच बात है। भाई, तुम मेवाड़में क्या उलटी तलवार लेकर लड़े थे?

परवेज—युद्ध जैसे किया जाता है, वैसे ही किया था। लेकिन वह देश अपरिचित था। फिर जिस दिन युद्ध हुआ, उस दिन हम युद्धके लिए तैयार नहीं थे।

शाह०—तुम शायद तमाखू पी रहे थे।

परवेज—तुम्हारा खयाल ठीक है खुर्रम, तमाखू ही पी रहा था। आगरेसे एक पेटी तमाखूकी ले गया था।

शाह०—भाई, तुमने यही भूल की। तमाखू, तकिया और औरत,—ये तीन चीजें कभी युद्धके मैदानमें न ले जाना चाहिए। आराम और युद्ध, तेल और पानीकी तरह बिलकुल ही मेल नहीं खाते।

शहर०—आश्चर्य है! तुम लोगोंके पास क्या युद्धके सिवा और कोई बात ही नहीं है? यह जगत् क्या एक हत्या-शाला है? पृथ्वी कैसी हरी-भरी है; पक्षियोंके बोल सुनो, नदीके जलका कलरव सुनो। इस संपूर्ण विश्वकी सुषमाका हृदयसे अनुभव करो।—

शाह०—शहरयार, बुराई जितनी ढँकी रहे, उतनी ही अच्छी। इसी तरह तुम जितना कम बोलो, उतना ही अच्छा। तुम चुप रहो।

शहर०—तुम्हीं-ऐसे लोगोंने मिलकर ही तो ऐसे सुन्दर जगतको कुत्सित बना रक्खा है!　　　　　　　　　(प्रस्थान)

परवेज़—शहरयार पूरा पूरा स्त्री है। बीमारीमें पलंगपर पड़े पड़े इसी तरह एकटक आकाशकी ओर ताका करता है, नदीकी तरफ देखा करता है। उस समय अगर कोई उसका सिर भी काट जावे तो उसे ख़बर न हो।

तीसरा दृश्य

स्थान—आगरेके महलमें नूरजहाँका कमरा

समय—दोपहरसे पहले

[नूरजहाँ अकेली पुस्तक पढ़ रही है।]

नूर०—ना, अब अच्छा नहीं लगता। (पुस्तक रखकर आईनेमें अपना चेहरा देखते देखते अलकावली सँभालते सँभालते) इसी चेहरेके लिए इतना हुआ!—हाय मेरे उदार स्वामी! इसी रूपने तुम्हारी जान ले ली! इस रूपने या मेरे कठिन अकृतज्ञ हृदयने? ईश्वर! ईश्वर! क्यों मैं कभी उन्हें प्यार नहीं कर सकी? उनसे बढ़कर प्यार करनेका पात्र और कौन था? देवोंके जैसा शरीर, सिंहके जैसा पराक्रम, माताके जैसा स्नेह, बच्चोंके जैसा भोलापन था!—तो भी तुम्हें प्यार नहीं कर सकी! ईश्वर जानते हैं,—तुम्हे प्यार करनेके लिए मैने अपने हृदयके साथ कितना युद्ध किया है, तो भी प्यार नहीं कर सकी। इसीसे तुमने बहुत ही खीझकर अपनी खुशीसे मौतको बुला लिया। मेरी उच्च आशाने ही तुम्हारा सर्वनाश किया, साथ ही मेरा भी सर्वनाश किया!—नहीं, तो भी युद्ध करूँगी। इस शैतानीका दमन करूँगी। यह शैतानी तुम्हारे मरनेके बाद मुझे महलमें जरूर खींच लाई

है; लेकिन मैंने भी, आज चार साल बीत गये, बादशाहका मुँह नहीं देखा; देखूँगी भी नहीं। देखूँ, कौन जीतता है!—स्वामी! तुम मरे हो मेरे कारण, मैं भी तुम्हारे ही लिए मरूँगी। तुम मरे हो औरोंसे युद्ध करके, मै मरूँगी अपने ही साथ युद्ध करके। तुम मरे हो दम-भरमें, मैं मरूँगी तिल तिल करके। तुम गये हो और मेरे लिए रख गये हो एक जीवित समाधि!—वह लैला जा रही है। पुकारूँ? —लैला, लैला!

लैला—(भीतर आकर) क्या है अम्मी?

नूर०—लैला, मेरी छातीसे लग जा। लैला! मेरी सर्वस्व!

लैला—क्या हुआ है अम्मी?

नूर०—लैला, तेरा चेहरा दिन-रात उदास क्यों बना रहता है? नजर नीचे किये रहती है। तेरा यह दीन वेष क्यों है?

लैला—क्यों? जानती नहीं हो?—अम्मी, तुम यहाँ आई क्यों?

नूर०—नहीं तो क्या कर सकती थी?

लैला—विष खा सकती थीं! माँ, जीवनका इतना मोह है! जिस पाजीने मेरे पिताको मरवा डाला उसी नीच, कायर, अधम, जल्लादके महलमें—

नूर०—चुप, चुप!

लैला—चुप!—मैं इस बातको दिन-रात अपने हृदयकी तहमें दबाये रक्खूँगी? तुमने यही सोच रक्खा है? नहीं, मैं सारे हिन्दुस्तानमें इस बातका ढिंढोरा पीटूँगी कि बादशाहने गुण्डे लगाकर मेरे बापकी हत्या कराई है! मैं यह बात कहूँगी, कहूँगी!—जब तक मेरा तालु सूख न जायगा; जब तक सारे वायुमण्डलमें यह उच्चारण छा न जायगा; जब

तक उस कलंककी कालिमासे सारा आकाश काला न पड़ जायगा, तब तक कहूँगी। यह बात मैं भरे दरबारमें तब तक कहूँगी जब तक कि बादशाह लज्जाके मारे सिंहासनसमेत धरतीमें धँस न जायगा। एक बार मौका-भर मिल जाय।

नूर०—बेटी, अगर तू महलके भीतर इस तरह चिल्लाती फिरेगी तो, मैंने पति तो खोया ही है, कन्याको भी खो बैठूँगी!

लैला—क्या बादशाह मेरी भी हत्या करेगा? करे। मैं डरती नहीं हूँ। मुझे तुम्हारी तरह जान प्यारी नहीं है। हा धिक्कार है!—चलो अम्मी, यहाँसे हम चल दें।

नूर०—आज्ञा नहीं है लैला!

लैला—आज्ञा नहीं है? हम क्या कैदी हैं?

नूर०—हाँ बेटी।

लैला—किस अपराधमें?

नूर०—मालूम नहीं।

लैला—(कुछ देर चुप रहकर धीरे धीरे) अम्मी, तुम मुझसे कहती हो कि तुम यहाँ अपनी इच्छासे नहीं आईं। लेकिन कहाँ! आते समय तो तुमने कुछ विशेष आपत्ति नहीं की! चुपचाप पली हुई हरिणीकी तरह इस महलके भीतर चली आईं। तुम कहती हो, हम कैदी हैं। लेकिन इस कैदखानेसे निकलनेके लिए तुममें कोई चेष्टा या आग्रह तो नहीं देख पड़ता। भिक्षुककी तरह इस विशाल अन्तःपुरके गंदे, बुरे, कुटीरमें पड़ी हो—बड़ी खुशीसे!—माँ, सच कहो, तुम यहाँसे जाना चाहती हो?

नूर०—चाहती हूँ।

लैला—तो बेगमके द्वारा बादशाहकी अनुमति माँग भेजो।

नूर०—सम्राट् अनुमति नहीं देंगे।

लैला—(जमीनपर पैर पटककर) देंगे, मैं कहती हूं, देंगे। क्या तुमने कभी सीधी तरहसे आग्रहके साथ अनुमति माँगी है अम्मी? अनुमति माँगो, माँगोगी?

नूर०—माँगूगी।

लैला—अच्छा तो अनुमति प्राप्त करनेकी जिम्मेदारी मैं अपने सिर लेती हूं।—देखूं, वह कैसे नहीं मिलती। (प्रस्थान)

नूर०—ओः कैसी लज्जाकी बात है! तो क्या भाग चलूँ?—भाग जाना ही ठीक है। बस, अब नहीं। लैलाकी कोमल मगर तीखी झिड़कियोंकी चोटसे मुझे अपने अन्तः करणके बुरे घावका पता लग गया है। यह भी समझमे आ गया है कि यह घाव कैसा घृणित है। नहीं, मैं भागूँगी। और किसी बातके लिए चाहे न हो, तेरे लिए भागूँगी लैला! मै तेरे निकट भी अविश्वास-पात्र नहीं बनूँगी। (स्वर धीमा करके) अभागिनी बेटी मेरी! उस दिनके बाद मैंने उसके मुखपर हँसीकी रेखा देखी ही नहीं। कभी कभी वह बहुत देरतक बैठी सोचा करती है। फिर ऐसी एक लंबी साँस छोड़ती है कि उसके साथ जैसे उसकी आधी जान निकल जाती हो। कभी कभी मेरी तरफ टकटकी बाँधकर ताका करती है; फिर एकाएक दोनो आँखोमे आँसू भर लाती है और उसी अवस्थामे मुँह फेरकर चली जाती है। कभी अस्पष्ट स्वरमे आप ही आप न जाने क्या कहती है,—इस तरहकी आकृति बनाती है जिससे घृणा, क्रोध और निराशा झलकती है। लो, वह शहनाईका बजना शुरू हो गया। कैसा विशाल यह महल है! नहीं, अब नहीं। यहाँसे चला जाना ही ठीक है।

[खदीजाका प्रवेश]

खदीजा—हुजूर, बहन कहाँ है?

नूर०—मालूम नहीं। तू यहाँ कब आई खदीजा?

खदी०—अभी थोड़ी ही देर हुई।

नूर०—किसके साथ आई है?

खदी०—अम्मीके साथ।

नूर०—वे कहाँ हैं?

खदी०—सम्राज्ञीके पास। मैं जाऊँ, देखूँ लैला कहाँ गई। तुम आओगी बुआ?

नूर०—ना।

खदी०—तो मैं जाती हूँ। (प्रस्थान)

नूर०—यह मेरी भतीजी अनुपम सुन्दरी है, इसीसे भावज इसे लेकर महलकी अविवाहित कुमार-मण्डलीमें आती जाती रहती हैं। हाय नारी! तेरी जाति ऐसी अधम है! तेरा यह रूप क्या मछली पकड़नेके काँटेकी तरह केवल मर्दोंको फँसानेके ही लिए बना है? यह क्या केवल मर्दोंको फँसानेका ही फंदा है? और हायरे अधम पुरुष! तुम अपने इतने बहुमूल्य शौर्य, बुद्धि, विवेक आदि रत्नोंको अनायास ही रमणीके निन्दनीय रूपके पैरोंपर अर्पित कर देते हो! (लम्बी साँस लेकर) सर्वश्रेष्ठ पुरुष-जातिकी यह दशा!

चौथा दृश्य

स्थान—महलका अन्तःपुर

समय—सन्ध्या

[जहाँगीर साथ खड़े हुए बातचीत कर रहे हैं]

जहाँ०—रेवा, तुम तो सब जानती हो।

रेवा—जानती हूँ!—हा ईश्वर! अगर मैं न जानती!

जहाँ०—जो पागल है, उसके दोषोंका फैसला कुछ अनुकम्पाके साथ किया जाता है। उस समय मैं पागल हो रहा था।

रेवा—फैसला करनेवाले तुम कौन और मैं कौन? जो फैसला या न्याय-विचार करनेवाले हैं (ऊपरको हाथ उठाकर), वे करेंगे। मैं उस पापके लिए तुम्हारा तिरस्कार करने नहीं आई, जो हो चुका है। मैं तो उसके लिए आई हूं जिससे आगे भी तुम्हारा मंगल हो। सुनो।

जहाँ०—कहो।

रेवा—शेरखाँकी विधवाको कैदसे छोड़ दो।

जहाँ०—मैंने उसे कैदमें नहीं, महलमें लाकर रक्खा है,—केवल इसी आशासे कि किसी दिन वह अपनी इच्छासे मेरे साथ ब्याह कर लेगी।

रेवा—मेहरुन्निसा अगर ब्याह करनेको राजी होती तो मैं खुद ही यह ब्याह करा देती। लेकिन चार साल बीत जानेपर भी जब वह ब्याह करनेके लिए राजी नहीं हुई तब उसकी इच्छाके विरुद्ध उसे महलमे कैद कर रखना घोर अन्याय है।

जहाँ०—एक बार क्या उससे मुलाकात भी नहीं कर सकता?

रेवा—नहीं, उसकी मर्जीके खिलाफ नहीं।

जहाँ०—रेवा, तुम्हारे ही अनुरोधसे अब तक मैंने शेरखाँकी विधवासे मुलाकात नहीं की,—हालाँ कि मैं कभी कभी उससे मिलनेके लिए पागल-सा हो गया हूँ।

रेवा—यही तो मनुष्यका काम है! मनुष्य यदि सदा प्रवृत्तिके ही अधीन बना रहे, तो उसमें और पशुमें अन्तर ही क्या रह जाय?

जहाँ०—मेहरुन्निसा वर्द्वानको लौट जाना चाहती है?

मुझे इतने गौरवकी वात जान पड़ता है ।—स्वामी, कर्तव्य-निष्ठाके खयालसे इस निष्फल अनुरागको भूलनेकी चेष्टा करो ।

(प्रस्थान)

जहाँ०—मैं क्या इतना अधम और अपदार्थ हूँ कि यह साधारण स्त्री मेरा कहा न माने ! इसको बड़ा घमंड है ! एक दिन मैंने सोचा था कि यह स्त्री सचमुच मुझे प्यार करती है,—हमारे मिलनेमें यदि कोई वाधा है तो केवल शेरखाँ है । सो वह क्या मेरा भ्रम ही था ! एक वार अगर उससे मुलाकत कर पाता ! (सिर झुकाये हुए टहलना) अच्छा, एक वार अन्तिम चेष्टा करके देखूँ ।—पहरेदार !

नेपथ्यमे—खुदावन्द !

जहां०—आयशखोके लड़के आसफको हाजिर करो ।

पहरेदार—जो हुक्म खुदावन्द । (प्रस्थान)

जहाँ०—एक वार आसफसे कहकर देखूँ । इतना परिश्रम किया, इतना कुचक्र रचा, और जव वह मेरी मुट्ठीमे आ गई, तव क्या उसे यो ही छोड़ दूँ !—कभी नहीं । एक वार अपनी पूरी ताकत लगाकर अन्तिम चेष्टा कर देखूँगा । यो सहजमें न छोड़ूंगा ।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—नूरजहाँका कमरा

समय—रात

[नूरजहाँ अकेली टहल रही है]

नूर०—आखिर मेरी अर्जी मंजूर हो गई । मै अव कहाँ जाऊँ ! पिताके पास ! या वर्द्वानको ! वहाँ मेरा कौन है ! नहीं है, न सही; मै जाऊँगी । मैंने जो कारीगरीके काम सीखे हैं उन्हींसे अपनी

वैसे ही,—बल्कि उससे भी अधिक, मुग्ध हैं। वे और यह साम्राज्य तुम्हारी मुट्ठीके भीतर हैं। चाहो तो मुट्ठीमें रख सकती हो और चाहो तो फेंक दे सकती हो।—क्या सोच रही हो मेहर?

नूर०—सोच रही थी सम्राज्ञी,—माफ कीजिएगा,—सोच रही थी कि अपने साम्राज्य-सुख और स्वामीको आप इस तरह लापर्वाही या खुशीके साथ दूसरेको दे डाल सकती हैं!

रेवा—(कुछ मुसकराकर) मैं हिन्दू जातिकी लड़की हूँ। हमारी जातिने दूसरोंको बाँटनेहीके लिए जन्म लिया है। भला बताओ, क्या यह भारतवर्ष भी हमने इसी तरह तुम्हारे हाथमें नहीं दे दिया है? हमारी आशा यहाँ नहीं है मेहर,—हमारी आशा और भरोसा (ऊपरकी ओर देखकर) वहाँ है।

नूर०—नहीं सम्राज्ञी, मैं सम्राज्ञी नहीं होना चाहती।

रेवा—अच्छी बात है। मैं किसी बातके लिए ज़ोर नहीं देती। केवल खबर देने आई थी। रात हो गई है। अब मै जाती हूँ।

(प्रस्थान)

नूर०—भारतकी अधीश्वरी! (कुछ देर टहल्ते टहलते सिर हिलाकर) नहीं, यह बात सोचना भी पाप है।—लेकिन मेरे भविष्यमे क्या निष्फल रोनेको छोड़कर और कुछ नहीं है?—ना, इस बारेमे अब मैं नहीं सोचूँगी।—ओः बड़ी गर्मी है! (खिड़कीके पास जाकर पट खोल देती है। फिर आकर आप ही आप कहती है—) मनुष्यके हृदयके भीतर क्या दो जीव हैं? नहीं तो इतने दिनोंसे यह युद्ध किसके साथ चल रहा है?—उः कैसी गर्मी है!—नहीं, मैं यह कभी न करूँगी। अबकी मैंने अपने हृदयको दृढ़ कर लिया है। मुझे इस संकल्पसे कोई विचलित

वैसे ही,—बल्कि उससे भी अधिक, मुग्ध हैं। वे और यह साम्राज्य तुम्हारी मुट्ठीके भीतर हैं। चाहो तो मुट्ठीमें रख सकती हो और चाहो तो फेक दे सकती हो।—क्या सोच रही हो मेहर ?

नूर०—सोच रही थी सम्राज्ञी,—माफ कीजिएगा,—सोच रही थी कि अपने साम्राज्य-सुख और स्वामीको आप इस तरह लापर्वाही या खुशीके साथ दूसरेको दे डाल सकती हैं!

रेवा—(कुछ मुसकराकर) मैं हिन्दू जातिकी लड़की हूं। हमारी जातिने दूसरोंको बाँटनेहीके लिए जन्म लिया है। भला बताओ, क्या यह भारतवर्ष भी हमने इसी तरह तुम्हारे हाथमें नहीं दे दिया है ? हमारी आशा यहां नहीं है मेहर,—हमारी आशा और भरोसा (ऊपरकी ओर देखकर) वहाँ है।

नूर०—नहीं सम्राज्ञी, मैं सम्राज्ञी नहीं होना चाहती।

रेवा—अच्छी बात है। मैं किसी बातके लिए ज़ोर नहीं देती। केवल खबर देने आई थी। रात हो गई है। अब मैं जाती हूँ।

(प्रस्थान)

नूर०—भारतकी अधीश्वरी! (कुछ देर टहलते टहलते सिर हिलाकर) नहीं, यह बात सोचना भी पाप है।—लेकिन मेरे भविष्यमे क्या निष्फल रोनेको छोड़कर और कुछ नहीं है!—ना, इस बारेमे अब मैं नहीं सोचूँगी।—ओः बडी गर्मी है! (खिड़कीके पास जाकर पट खोल देती है। फिर आकर आप ही आप कहती है—) मनुष्यके हृदयके भीतर क्या दो जीव है ? नहीं तो इतने दिनोंसे यह युद्ध किसके साथ चल रहा है!—उ. कैसी गर्मी है!—नहीं, मैं यह कभी न करूँगी। अबकी मैंने अपने हृदयको दृढ़ कर लिया है। मुझे इस संकल्पसे कोई विचलित

न कर सकेगा। इस बारेमें मुझपर मेरी कन्याका और मेरे मरे हुए स्वामीके सम्मानका ऋण है,—ऐसा कभी न करूँगी।

[दासीका फिर प्रवेश]

दासी—आपके भाईसाहब आपसे मिलना चाहते हैं।

नूर०—कौन, आसफ?

दासी—हाँ जनाब।

नूर०—अच्छा, ले आओ।

(दासीका प्रस्थान)

नूर०—इस समय आसफ क्यों आये हैं?

[आसफका प्रवेश]

नूर०—क्या खबर है? इस समय तुम एकाएक कैसे आये?

आसफ—अच्छी खबर है। मैं अच्छी ही खबर लाता हूँ।

नूर०—क्या खबर है?

आसफ—कहता हूँ ठहरो, जरा दम ले लेने दो।

(नूरजहाँ चुपचाप उनकी तरफ ताकती है।)

नूर०—(कुछ देर बाद) अब कहो क्या खबर है?

आसफ—खबर सुनोगी?—सुनो। सम्राट् तुमसे एकदफा भेंट करना चाहते है।

नूर०—भेंट करना चाहते हैं? मतलब?

आसफ—मतलब क्या तुम नहीं जानतीं मेहर?

नूर०—हाँ, अनुमान कर सकती हूँ। अगर वही मतलब है तो उनसे मेरा सलाम करके कहना कि उस सम्मानका बोझा मैं नहीं उठा सकती।

आसफ—क्या तुम यहाँसे जानेके पहले उनसे एक बार मिलना भी नहीं चाहतीं?

नूर०—नहीं ।

आसफ—मेहर, तुम्हारे इस अद्भुत गँवारपनके बारेमें मैं क्या कहूँ ! आज शेरखाँको मरे चार साल हो गये । मुसलमानी शरहसे विधवा-विवाह मना नहीं है । चार सालका समय बीत गया;—दिनोंके बाद दिन लहरोंकी तरह गुजरते चले जाते हैं, तो भी तुम्हारी याद सम्राट्के मनमें पत्थरकी लकीरकी तरह दृढ़, अटल और अक्षुण्ण बनी हुई है। फिर भी तुम—

नूर०—आसफ, मेरी याद सम्राट्के हृदयमें जितने उज्ज्वल भावसे अंकित है, अपने स्वामीकी स्मृति भी मेरे हृदयमें वैसी ही बनी हुई है ।

आसफ—लेकिन तुम अपने स्वामीको तो अब पा नहीं सकतीं ! फिर यह कैसी नादानी है, कुछ समझमे नहीं आता ।

नूर०—तुम नहीं समझ सकोगे । यह विरोध, यह पछतावा, यह शोक, यह जीकी जलन,—तुम क्या समझोगे !

आसफ—लेकिन सब काम छोड़कर केवल शोक करना ही क्या तुम्हारे जीवनके कल्याणकी साधना है ?—जब कि तुम इच्छा करनेसे ही सारे भारतकी अधीश्वरी हो सकती हो,—एक बातमे,—एक इशारेमें,—एक पलकमें—

नूर०—मैं यह नहीं चाहती ।—तुम्हारा उपदेश वृथा है। मुझे राजी न कर सकोगे । जाओ ।

आसफ—(कुछ देर चुप रहकर धीरे धीरे) मेहर, आज तुम इस महासम्मानको फेंके देती हो। किन्तु बादको जब शिथिल बुढ़ापा आकर तुम्हारे ऊँचे मस्तकपर आसन जमावेगा तब तुम्हारे मनमे एक निष्फल पछतावा होगा कि तुमने जवानीका यह कितना बड़ा सुयोग अपने हाथसे

गवाँ दिया। जिस सुयोगको आज तुम लात मारकर ठुकरा रही हो, उसे तब पैरों पड़कर भी न लौटा सकोगी।

नूर०—इन सबने एक कुचक्र रच रक्खा है! ये मुझे पागल बनाये बिना न छोड़ेंगे! (चिल्लाकर) तुम क्यों आये? जाओ!

आसफ—जाता हूँ मेहर, लेकिन जाते जाते फिर कहे जाता हूँ,—सुनो और सोचो कि आज तुम कैसा पद, कैसी मर्यादा हाथमें पाकर छोड़े देती हो और इच्छा करते ही क्या हो सकती हो। आज इसी जगह, इसी घड़ी ठीक हो जायगा कि तुम बाहर उतारी हुई जूतीकी तरह पड़ी रहोगी या शाही महलके कमरेके केन्द्रमे ऊपर झूलते हुए झाड़की तरह प्रकाश डालोगी! राहकी कंगालिनी होना और भारतकी अधीश्वरी बनना, इन दोनोंमें एक बात पसन्द कर लेना क्या इतना कठिन है?

नूर०—कुछ कठिन नहीं है। मैंने पसन्द कर लिया है। मैं राहकी कंगालिनी ही बनूँगी।

आसफ—लेकिन मेहर, तुम्हीं अकेली राहकी कगालिनी न बनोगी, बल्कि अपना यह सारा परिवार कंगाल बन जायगा। सम्राट्ने कहा है कि अगर तुम राजी हो जाओगी तो वे पिताको मन्त्रीका पद दे देंगे, और नही राजी हुई तो वे खजाची भी रहेगे या नहीं, सन्देह है।

नूर०—(कुछ सोचकर) जानते हो आसफ, तुम यह क्या प्रस्ताव कर रहे हो? प्रस्ताव कर रहे हो कि मै अपना शरीर, अपनी आत्मा, अपनी मर्यादा,—जो कुछ अपना है सब, एक साम्राज्यके लिए फेंक दूँ! जो मेरे स्वामीकी हत्या करानेवाला है, जिसके लिए केवल एक तीव्र प्रतिहिंसा, खुली हुई तेज तरवारकी तरह, मेरे हृदयके भीतर प्रदीप्त रहनी चाहिए, उसीको मै प्रेमपूर्वक गले लगाऊँ?

उस शक्तिको हटाकर तुम तूफानको बुला रहे हो। या यह तूफान बिना किसी रुकावटके इस साम्राज्यके ऊपर आ पड़ेगा।

आसफ—क्या करना चाहती हो?

नूर०—सो अभी तक मुझे भी ठीक ठीक मालूम नहीं। मगर हाँ, इस शैतानी शक्तिको मैं जानती हूँ। जाओ, सम्राट्से जाकर कहो,—मैं उनसे ब्याह करनेको तैयार हूँ।

(आसफका प्रस्थान)

नूर०—तो यह भारी साम्राज्य अब एक भारी भूकम्पसे काँप उठे!

छठा दृश्य

स्थान—महलका एक कमरा

समय—रात

[मुसाहब लोग बैठे हैं। सामने नाचनेवालियाँ हैं।]

१ मु०—गाओ, गाओ, और गाओ। आज रात-भर जलसा मनाना होगा,—खुशी करनी होगी।

२ मु०—हाँ, आज बादशाहका ब्याह है और यह कोई मामूली बात नहीं है साहब! शेरखाँकी विधवाके साथ शाहंशाह जहाँगीरका ब्याह है!

३ मु०—और साथ ही साथ सम्राट्के पुत्र खुर्रमके साथ विधवाके भाई आसफकी कन्याका जो ब्याह है उसे तुम जैसे कुछ समझते ही नहीं!

२ मु०—अरे, उन सब बेकार ब्याहोंकी बात जाने दो।

३ मु०—बेकार ब्याह? कैसे?

२ मु०—पहला ब्याह क्या ब्याह है! वह तो मानो बालकका ज़बानी पहाड़े याद करना है।

४ मु०—पहाड़े याद करना कैसा ?

२ मु०—असल हिसाब तो दूसरे ही ब्याहसे शुरू होता है। उसके बाद ब्याहोंकी संख्या जितनी ही बढ़ती जाती है, उतना ही हिसाब-किताब भी बढ़ता जाता है।

३ मु०—तो ब्याह ठहरा हिसाब सीखना !

२ मु०—हाँ, बड़ा भारी हिसाब है। और वह मैंने ठगाकर सीखा है भैया।

४ मु०—सुना है, आसफकी बेटी बहुत ही सुन्दर है।

२ मु०—सुना है क्या, देखा है।

३ मु०—कैसी है ! कैसी है !

२ मु०—जानते हो कैसी है ? ठीक परी-जैसी है। परी तो तुमने जरूर देखी होगी ?

४ मु०—अर्थात् मनुष्य इतना सुन्दर नहीं होता, यही न तुम कहना चाहते हो ?

२ मु०—और भी अधिक बखान चाहो, तो सुनो। उसकी दोनो आँखें कमल-दलोसे बड़ी, कान शंख जैसे, नाक वंसीकी तरह और चोटी नागिनकी तरह है। खूब समझ रहे हो ? रूप तुम्हारे ध्यानमे जमता जा रहा है ?

१ मु०—अरे टीका-टिप्पणी रहने दो। वह तुम लोगोंमेसे तो किसीकी स्त्री होगी ही नहीं; फिर उसका वर्णन करनेकी क्या जरूरत है ? गाओ, नाचो और मजा करो।

[गानेवालियाँ गाती है]

विहाग तिताला

आज है नव उत्सवका रंग।

नये रत्न-आभूषण सज दो, प्रकृति-सतीके संग ॥ आज० ॥

जानता हूँ कि सम्राट् मुझे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं,—राज-परिवारके लोग भी अवज्ञाकी दृष्टिसे देखते हैं; तो भी चेष्टा कर सकता हूँ।

लैला—शाहज़ादा, आपको सब लोग जो उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं, यही तो आपका सौन्दर्य है।

शहर०—मैं तुम्हारे कहनेका मतलब नहीं समझ सका।

लैला—आप नहीं समझ सकते। समझनेकी वृथा चेष्टा भी न करिएगा।

शहर०—तुम भी मुझे अनादरकी दृष्टिसे देखती हो?

लैला—नहीं शाहज़ादा, मै आपकी असहाय अवस्थाको, आपके शरीर और मनकी कमज़ोरीको, आपकी वर्त्तमान और भविष्य दीनताको बहुत ही सुन्दर देखती हूँ।

शहर०—क्या मेरी कोई बात तुम्हें सुन्दर देख पड़ती है लैला?

लैला—आपके आगे झूठ कहनेमें मुझे कुछ लाभ नहीं है। आप बड़े ही दीन हैं,—मुझसे भी दीन हैं।

शहर०—तुम दीन हो लैला? तुम सम्राज्ञीकी कन्या हो, तुम सम्राट्की—

लैला—बस शाहज़ादा। सम्राट्के साथ मेरा नाम लेकर मुझे कलुषित न करिएगा। हाँ, मै सम्राज्ञीकी कन्या अवश्य हूँ,—हाय, यह बात अस्वीकार करनेका कोई उपाय नहीं है!

शहर०—लैला, तुम भी एक पहेली हो।

लैला—शाहज़ादा, मेरा चरित्र क्या आपको ऐसा ही जटिल जान पड़ता है?

[दासीका प्रवेश]

दासी—(लैलासे) आपको बेगमसाहबाने याद किया है।

लैला—मुझे ?

दासी—हाँ जनाव ।

लैला—वेगम साहवाने ?

दासी—जी हाँ, वेगम साहवाने ।

लैला—क्या मतलव है ?

दासी—मुझसे यह कुछ नहीं कहा ।

लैला—अच्छा आती हूँ, जाकर कह दे ।

(दासीका प्रस्थान)

लैला—शाहज़ादा, मैं जानती हूँ, आप मुझसे प्रेम करते हैं। लेकिन उस प्रेमको कम करनेकी चेष्टा कीजिए ।

शहर०—तुम मुझसे प्रेम नहीं करतीं ?

लैला—करती हूँ। अगर मुझे किसीसे प्रेम है तो आपसे; तो भी मैं आपके साथ व्याह नहीं कर सकती ।

शहर०—मेरा अपराध ?

लैला—अपराध यही है कि आप जहाँगीरके वेटे हैं ।

शहर०—खुर्रम भी तो जहाँगीरके वेटे हैं ।

लैला—इससे क्या ?

शहर०—तुम्हारी वहन खदीजाने तो उसके साथ व्याह किया है।

लैला—खदीजा आसफखाँकी वेटी है, शेरखाँकी वेटी नहीं है!—जाइए। आप क्यों मेरे एकान्तवासमें, मेरे दुःखमें, मेरी निराशाकी दूषित हवामें आकर अपनेको भी दुखी करते हैं ?

शहर०—तो फिर तुम और किसीसे व्याह करोगी ?

लैला—ना शाहज़ादा, इस वारेमें आप निश्चिन्त रहिए ।

शहर०—तुम ब्याह करोगी?

लैला—नहीं।

शहर०—क्यों लैला?—इस विशाल विश्वको आँख उठाकर देखो। देखो, वह सुनहली सन्ध्या आकाशके नील-हृदयसे लगकर सोई हुई है। वह लहराता हुआ पवन हरी-भरी धरतीको गले लगा रहा है। वह भौंरा सुगन्धित कलीका मुँह चूम रहा है।—इस संसारमें कौन अकेला है?

लैला—तो फिर मुझे आप इस विश्वके बाहर समझिए। मेरा दुःख,—(सहसा दोनो हथेलियाँ मलकर करुण स्वरमें) जाइए शाहज़ादा, जाइए, यह सब सुननेका मुझे समय नहीं है,—मेरी अवस्था भी वैसी नहीं है।

शहर०—तुम्हें क्या दुःख है, सो मुझे जताओगी भी नहीं?

लैला—नहीं, आप समझ नहीं सकेंगे।—आप जाइए।

(शहरयारका प्रस्थान)

लैला—तुम मेरा दुःख क्या समझोगे शहरयार! पृथ्वीपर क्या कोई भी किसीका दुःख समझ सकता है! मेरी मा,—यह कहना भी अनुचित न होगा कि मेरे पिता जिसकी पूजा करते थे,—आज उसी जल्लादकी स्त्री है जिसने निष्ठुर भावसे मेरे पिताको मरवा डाला था! एक साम्राज्यके लिए, एक भूमि-खण्डके लिए, (कहते कहते स्वर भंग हो जाता है) —मेरी मा आज पराई हो गई! मेरी सोनेकी मूर्तिको मेरे हृदयके सिंहासनपरसे डाकू उठा ले गया! मेरा सब कुछ गया और मैं खड़ी खड़ी अपनी आँखोंसे देखती रही! आँखोंमें आँसू नहीं थे। मुखमें आर्तनाद नहीं था। चुपचाप खड़े खड़े देखा की!—कुछ कर न सकी! माको बचा नहीं सकी!—बचा नहीं सकी! (प्रस्थान)

नूर०—सो हो गया। सच बात है। इसके माफिक सच बात संसारमे और कुछ नहीं है जहाँपनाह।—उस बातको जाने दीजिए। क्या मैं एक बात पूछ सकती हूँ जहाँपनाह ?

जहाँ०—क्या बात नूरजहाँ ?

नूर०—सुनती हूँ, जहाँपनाहने शाहज़ादा खुसरूको कैदसे रिहा कर दिया है ?

जहाँ०—हाँ प्रियतमे।

नूर०—क्या सम्राज्ञी रेवाने सम्राट्से इस बारेमे अनुरोध किया था ?

जहाँ०—हाँ,—ना,—अर्थात् उन्होने मुँह खोलकर कुछ नहीं कहा। मगर उनके आँसू जो सारे हृदयका निषेध रहते भी उमड़ पड़ते हैं, उनकी लम्बी साँस जो भीतर रुकी हुई भापकी तरह सारे शरीरको कँपा देती है, उनका अव्यक्त अनुनय-विनय जो अनिर्वचनीय भाषाद्वारा मुँहपर झलकता है,—इन सब बातोंने मिलकर मुझे जीत लिया। इसके सिवा खुसरू मेरा पुत्र ही तो है !

नूर०—निश्चय। मगर (हँसकर) जब मेरे भानजे शफीउल्लाको मौतका दण्ड दिया था तब जहाँपनाहने अपने न्याय-विचारकी,—इंसाफकी कुछ अधिक बड़ाई की थी।

जहाँ०—लेकिन, वह तुम्हारी बहनका लड़का था। तुम्हारा लड़का नहीं था।

नूर०—लेकिन मेरा पोष्य-पुत्र तो था !

जहाँ०—पोष्य-पुत्र और अपना पुत्र,—कितना अन्तर है !—नूरजहाँ, तुम नहीं जानतीं कि पुत्र क्या चीज़ है !

नूर०—नहीं जहाँपनाह, यह जाननेका सुयोग मुझे नहीं मिला।

जहाँ०—खुसरू एक तो मेरा बेटा है,—

नूर०—और फिर, सम्राज्ञी रेवाका पुत्र है।

[लैलाका प्रवेश]

लैला—(धीरेसे) तुमने मुझे बुलाया था ?

नूर०—हाँ लैला, बुलाया था ।

लैला—मतलब ?

नूर०—मतलब है । और लैला, क्या बिना मतलबके तुम्हें मेरे पास न आना चाहिए ?

लैला—नहीं । बिना मतलबके तुम्हारे पास न आना चाहिए ।

नूर०—(कातर दृष्टिसे लैलाकी ओर देखकर) क्यों ?

लैला—(स्थिर शुष्क स्वरमे) तुम्हारे साथ अब मेरा क्या सम्बन्ध रह गया है ?

नूर०—क्यों, मैं तुम्हारी मा हूं !

लैला—सुनती अवश्य हूं ।

नूर०—सुनती हो !—केवल सुनती हो !—यहां तक !

लैला—हां सुनती हूं, किन्तु ठीक समझमें नहीं आता । ठीक विश्वास नहीं होता कि मेरी मा पृथ्वीके एक टुकड़ेके लिए अपनेको बेच सकती है । कभी कभी मुझे जान पड़ता है कि शायद मेरी मा कोई और थी । वह मर गई । उसके बाद पिताने तुमसे ब्याह किया और मुझे तुम्हें 'मा' कहना सिखाया ।

नूर०—नहीं लैला, मैं अभागिन सचमुच ही तुम्हारी मा हूं ।

लैला—होओगी ।—मेरे जीवनका सबसे बढ़कर दुःख यही है कि तुम मेरी मा हो ।—ओः ! लड़कपनमे किसीने मुझे अफीम खिलाकर मार क्यों नहीं डाला ! यदि मार डाला होता, तो यह बदनामी न सुननी पड़ती । अगर इस समय भी कोई मुझे इस पत्थरपर दे मारे !—मेरे इस शरीरके टुकड़े टुकड़े हो जायँ !—ओः—मा, मैं आत्म-हत्या कर लूँगी ! अब और नहीं सहा जाता—

दया, कृतज्ञता और पुण्य गवाँकर एक शैतानके हाथ तूने अपनेको बेच डाला है।

नूर०—चुप रह लड़की !

लैला—किस लिए नारी ? तू आज भारतकी सम्राज्ञी होकर सोचती है कि मैं तेरी टेढ़ी भौंहें देखकर भयके मारे जमीनमें धँस जाऊँगी ? यह भूलकर भी न समझना। याद रख, तू अगर जहाँगीरकी स्त्री है, तो लैला भी शेरखाँकी लड़की है।

नूर०—(ऊँचे स्वरसे) लैला !

लैला—(वैसे ही स्वरमें) नूरजहाँ !

[दोनों क्रोधमें भरी हुई दो शेरनियोंकी तरह ज्वालामयी दृष्टिसे परस्पर ताकती हैं। इसी समय जहाँगीर प्रवेश करते हैं।]

जहाँ०—यह क्या लैला ! यह क्या नूरजहाँ !

[दोनों चुप रहती हैं। नूरजहाँ रो देती है।]

लैला—रोओ रोओ, जिन्दगी-भर रोओ, शायद इससे ही यह कलंककी कालिमा धुल जाय। तुम तो बुरी नहीं थीं, किसने तुम्हें यह सलाह दी ? किसने तुम्हे स्वर्गके राज्यसे खींच लाकर (जहाँगीरको दिखाकर) इस अस्थि-कुण्डमे डाल दिया ?

जहाँ०—समझ गया। याद रख लड़की, तू यद्यपि नूरजहाँकी कन्या है, तो भी मेरे धैर्यकी भी एक हद है।

लैला—याद रखिएगा सम्राट्, आप यद्यपि नूरजहाँके स्वामी हैं, तो भी मेरे धैर्यकी भी एक हद है।

जहाँ०—देखता हूं, तेरा साहस बहुत बढ़ गया है। अबकी बार मैं तुझे दण्ड दूंगा।

लैला—आप दण्ड देंगे ? मुझे ?

नूर०—(खीझकर) क्या नहीं सहा जाता लैला?

लैला—यही दृश्य! यह बीभत्स व्यभिचार! यह ख्याल कि मेरी माने साम्राज्यके लोभसे अपने स्वामीकी हत्या करनेवालेके साथ शादी की है। जब वह जल्लाद आकर, तुम्हारा हाथ पकड़कर, तुम्हें 'प्यारी' कहकर पुकारता है तब,—क्या कहूँ,—मा, मेरे सारे अंगोंमें मानों हजारों बिच्छू डसने लगते हैं! कैसे बतलाऊँ, वह जलन कैसी है!—और वह जलन एक दिनकी नहीं, एक महीनेकी नहीं, नित्यकी है! आँखोंके आगे नित्य देखती हूँ कि उस पापके कारखानेमें नये नये अविचार, अत्याचार और व्यभिचार तैयार हो रहे हैं! ओः!—

नूर०—देखो लैला, मैं इस तरह तुम्हारा लाल लाल आँखें दिखाना और झिड़की देना रोज रोज नहीं सहूँगी।

लैला—क्या करोगी? मुझे मार डालोगी? यह तो कोई अचरजकी बात नहीं है। जो पतिके हत्यारेसे शादी कर सकती है, वह कन्याकी हत्या भी कर सकती है। (अनुकम्पाके स्वरमें) हाय री अभागिनी स्त्री! तेरे ऊपर क्रोध क्या करूँ! कभी कभी तेरे लिए मुझे बड़ा दुःख होता है! तू पहले किसकी स्त्री थी और अब किसकी स्त्री हुई है! कहाँ वह शेरखाँ, और कहाँ यह जहाँगीर! कहाँ अगाध असीम स्वच्छ नील समुद्र, और कहाँ दुर्गन्धपूर्ण तुच्छ कीचड़से भरी यह गढ़ैया! कहाँ शेर, और कहाँ सियार!—ओ नारी, तुझे लज्जा नहीं आती, दुःख नहीं होता कि तूने अपने उस देवताके सिंहासनपर अपनी इच्छासे एक कामुकको बिठाया है! उस सरल, उदार, पूज्य, पवित्र, उज्ज्वल, महिमामय चरित्रके माहात्म्यको भूलकर आज तू एक नीच, हेय, कलुष-पंकिल पापकी उपासना करने बैठी है! तुझे लज्जा नहीं आती कि स्त्रीका जो कुछ महान् है वह स्नेह,

यही आखिरी मर्त्तबा है नूरजहाँ! (लैलाको ढकेला देकर) यही आखिरी मर्त्तबा है, समझी लड़की? याद रहे।

(जहाँगीरका प्रस्थान। लैला घृणाकी दृष्टिसे जहाँगीरकी ओर देखती रहती है)

लैला—(उनके चले जानेपर सहसा नूरजहाँकी तरफ देखकर) अम्मी!

नूर०—लैला!

लैला—एक काम करोगी?

नूर०—क्या?

लैला—तुमने जो पाप किया है, वह मेरी सौ झिड़कियोंसे भी पुण्य तो हो नहीं सकता। अब उसका कुछ प्रायश्चित्त कर डालो।

नूर०—क्या प्रायश्चित्त?

लैला—इस परिवारको नरकमें डालो। अगर स्वर्गके राज्यसे गिरी हो, तो फिर पूरी तौरसे पिशाची बन जाओ। तुम इस शाही खान्दानको चारों ओरसे लपेटकर नागिनकी तरह अपने विषसे नष्ट कर दो। इस परिवारको मिटा दो। मैं तुम्हारा कहा न माननेवाली लड़की हूँ; लेकिन, इस मामलेमें तुम जो कुछ कहोगी वही करूँगी।—

नूर०—(लैलाका हाथ पकड़कर) जो कहूँगी वही करोगी?

(नूरजहाँका मुख उज्ज्वल हो उठता है।)

लैला—हाँ अम्मी, तुममें बुद्धि नहीं है। तुम अपनी शैतानी बुद्धि मुझे दे दो। मैं अपनी सारी शक्ति तुमको दूँगी। आओ, दोनों जनी मिलकर एक भारी तूफान उठावें! हम दोनों मा और बेटी नहीं हैं, बल्कि दोनों बहनें हैं:—शैतानी हैं,—हमारी एक गति, एक दर्द और एक परिणाम है।

जहाँ०—हाँ हाँ, मैं, और तुझे। तेरा व्यवहार असह्य हो उठा है। मैं तेरे इस मिजाजको नर्म करना जानता हूँ।

लैला—सम्राट्, लैला शेरखाँकी लड़की है। वह डरनेवाली नहीं है।—तुम स्वेच्छाचारी डाकू हो! क्या इसी नीतिको लेकर तुम एक साम्राज्यका शासन करने बैठे हो? जहाँगीर, मुझे तो इसी बातपर बड़ा भारी अचरज हो रहा है कि तुम इस समय शेरखाँकी लड़कीके सामने इस तरह खड़े हुए हो! जल्लाद, जरा मेरे सामने आँख उठाकर तो देखो, देखूँ तुममें कितना साहस है! देखो,—याद रक्खो, मैं शेरखाँकी लड़की हूँ। देखो,—देखूँ, तुममें कितनी हिम्मत है!

जहाँ०—नूरजहाँ, इस शेरनीको अगर तुम मना न करोगी तो मैं अल्लाहकी कसम खाकर कहता हूँ कि—

लैला—मुझे मार डालोगे? तो वही करो सम्राट्! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे मार डालो।—जिस तरह मेरे पिताको मार डाला है उसी तरह मुझे भी मार डालो। उससे मुझे कमसे कम यह सान्त्वना तो अवश्य होगी कि मैं मरते दम तक तुम्हें कोस-कोसकर मर सकी।

जहाँ०—अच्छी बात है! ऐसा ही होगा।—पहरेदार!

नूर०—अबकी इसे क्षमा कर दीजिए जहाँपनाह, इसमें मेरा ही दोष है। मैंने ही इसे [illegible] सिखाया है।

जहाँ०—नहीं, मैं अब और नहीं सह सकता नूरजहाँ, इसका फैसला आज ही कर डालना होगा।—पहरेदार!

नूर०—(घुटने टेककर) जहाँपनाह, मेरा पुत्र नहीं रहा, कन्याको बचने दीजिए। अबकी इसे क्षमा कर दीजिए।

जहाँ०—(कुछ सोचकर) अच्छा, अबकी क्षमा करता हूँ; लेकिन

यही आखिरी मर्त्तबा है नूरजहाँ ! (लैलाको ढकेला देकर) यही आखिरी मर्त्तबा है, समझी लड़की ? याद रहे ।

(जहाँगीरका प्रस्थान । लैला घृणाकी दृष्टिसे जहाँगीरकी ओर देखती रहती है)

लैला—(उनके चले जानेपर सहसा नूरजहाँकी तरफ देखकर) अम्मी !

नूर०—लैला !

लैला—एक काम करोगी ?

नूर०—क्या ?

लैला—तुमने जो पाप किया है, वह मेरी सौ झिड़कियोंसे भी पुण्य तो हो नहीं सकता । अब उसका कुछ प्रायश्चित्त कर डालो ।

नूर०—क्या प्रायश्चित्त ?

लैला—इस परिवारको नरकमे डालो । अगर स्वर्गके राज्यसे गिरी हो, तो फिर पूरी तौरसे पिशाची बन जाओ । तुम इस शाही खान्दानको चारो ओरसे लपेटकर नागिनकी तरह अपने विषसे नष्ट कर दो । इस परिवारको मिटा दो । मै तुम्हारा कहा न माननेवाली लड़की हूँ; लेकिन, इस मामलेमे तुम जो कुछ कहोगी वही करूँगी ।—

नूर०—(लैलाका हाथ पकड़कर) जो कहूँगी वही करोगी ?

(नूरजहाँका मुख उज्ज्वल हो उठता है ।)

लैला—हाँ अम्मी, मुझमे बुद्धि नहीं है । तुम अपनी शैतानी बुद्धि मुझे दे दो । मैं अपनी सारी शक्ति तुमको दूँगी । आओ, दोनों जनी मिलकर एक भारी तूफान उठावें ! हम दोनों आज मा और बेटी नहीं हैं, बल्कि दोनो बहने हैं;—शैतानी हैं,—हमारी एक गति, एक लक्ष्य और एक परिणाम है ।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—अन्तःपुरके महलका जनाना बाग

समय—चाँदनी रात

[खदीजा टहल टहल कर गा रही है]

गीत

क्यों इतना है चन्द्र मनोहर ?—रूप उसीका पाया है।
क्यों इतना रंगीन कमल है ?—उसका रंग चुराया है॥ क्यों०॥
क्यों इतना है ललित कोकिलाका संगीत हृदयहारी ?
उसने भी उस प्रियतमहीका मीठा बोल सुनाया है॥ क्यों०॥
क्यों यों स्निग्ध सुगन्धित कोमल मलय पवन है ?—हाँ वह भी-
स्पर्श उसीका पाकर लाकर, सब जगके मन भाया है॥ क्यों०॥
गगन-भुवनमें व्याप्त सदा ही रूप प्रकाश उसीका है।
विधिने सब सौन्दर्य उसीसे लेकर जगत बनाया है॥ क्यों०॥
उसके चरण हृदयमें रखती पृथ्वी, इससे ही उसको।
मैं करती हूँ प्यार हृदयसे; मनमें वही समाया है॥ क्यों०॥
इस जीवनके दुख-अभाव सब, भाग्य-चक्रका फेर सभी।
इन आँखोंके किरण-तले रह मैंने सहज भुलाया है॥ क्यों०॥

[शाहजहाँ जब प्रवेश करते हैं तब भी खदीजाका गीत समाप्त नहीं होता। शाहजहाँ भी उसमें कुछ विघ्न नहीं डालते, सुनने लगते हैं। खदीजा आप अपनेमें ही मग्न होकर गा रही थी। शाहजहाँको देखकर गाना बंद कर देती है और दौड़कर शाहजहाँसे लिपट जाती है]

खदीजा—कौन, मेरे प्राणेश्वर ?

शाह०—प्राणेश्वर हूँ या नहीं, सो तो नहीं जानता। पर मैं खुर्रम अवश्य हूँ।

खदीजा—मै अबतक तुम्हारी ही राह देख रही थी।

शाह०—मेरे परम सौभाग्य!—मैं तुमसे एक बात यह पूछता हूँ खदीजा, कि अभी तुम जो गाना गा रही थीं, सो किसे लक्ष्य करके?

खदीजा—सो क्या तुम जानते नहीं प्यारे?

(शाहजहाँके दोनों हाथ अपने हाथोंमें ले लेती है।)

शाह०—इस तरह करके ही तो तुम गड़बड़ मचा देती हो।

खदीजा—तुम्हे ही लक्ष्य करके गा रही थी।

शाह०—तब तो तुमने मुझे बडी ही चिन्तामे डाल दिया।

खदीजा—क्यों?

शाह०—मैंने अपने चेहरेको अकसर आइनेमें देखा है। मैंने देखा है कि न वह कमल है, और न चन्द्रमा ही है।

खदीजा—मैं तुम्हारे मुखमे जो सौन्दर्य देखती हूँ नाथ, वह सैकडों चन्द्रमाओं या कमलोंमें नही है। कारण, मैं इस मुखमे एक महिमामय अन्तर्जगत् देखती हूँ। इन दोनो आँखोंके भीतर मैं तुम्हारी प्रतिभा और सब प्राणियोंपर दयाका भाव देखती हूँ। इस ऊँचे मस्तकमे एक साहस और अपनी मर्यादाके ख़यालकी झलक देखती हूँ। इन ओठोंके किनारोंमें तुम्हारी दृढ़-प्रतिज्ञा और स्नेह देखती हूँ। मैंने तुम्हारे शरीरमें ही तुमको पाया है, जैसे हिन्दू भक्त प्रतिमाके भीतर अपने देवताको पाता है।

शाह०—तो फिर तुम्हारा उद्धार निश्चित है। अच्छा खदीजा, तुम्हारे पिता आसफ और सम्राज्ञी नूरजहाँ सगे भाई-बहन हैं न?

शाह०—सेनापति महाबतखाँ मेवाड़को जीत चुके थे, उसके बाद अब्बाने मुझे मेवाड़से सन्धि करनेके लिए भेजा। मैंने जाकर सुलह की। किन्तु, प्रसिद्ध यह हुआ कि मैंने मेवाड़को जीता!

खुसरू—मगर महाबतखाँने इसका कुछ प्रतिवाद नहीं किया?

शाह०—यह उनकी उदारता है। वे उस सम्मानको नहीं चाहते। बल्कि, मालूम नहीं किस कारणसे, मेवाड़की जयके सम्बन्धमें वे अपनी बातको मानो दबाना ही चाहते हैं।

खुसरू—हाँ! यह मैं नहीं जानता था। सो, चाहे जो हो, उसके बाद राणाके साथ तुमने जो सन्धि की है, उसमें तुमने बड़ी ही उदारता दिखाई है। हारे हुएके साथ ऐसी सम्मानकी सन्धि शायद ही पहले कभी हुई हो।

शाह०—भाई साहब, देश काल और पात्र देखकर ही शक्तिका व्यवहार किया जाता है। मेवाड़का राजवंश एक बहुत पुराना नेकनाम राजवंश है।—जिस वंशमे बाप्पाराव, रानी चन्द्रावती, समरसिंह, प्रतापसिंहने जन्म लिया है, उसी वंशका आज पतन हुआ है। उसके दुःखपर जरा गौर तो करो! उसके उस दुःखके बोझको यथासंभव हलका करनेकी ही कोशिश मैंने की है।

खुसरू—खुर्रम, मै तुमपर बड़ी श्रद्धा रखता हूँ और प्यार करता हूँ। मै भी तुम्हारे साथ दक्खिन चलूँगा, अगर तुम इसमें सहमत हो और अब्बा हुक्म दे दे तो।—मै युद्ध करना सीखूँगा।

शाह०—चलो, तो पहले अब्बाके पास चलें।

खुसरू—चलो।

शाह०—भाई साहब, आप चलें, मैं आता हूँ।

(खुसरूका प्रस्थान)

शाह०—इन राजाओंकी इतनी हिम्मत! ये उस दिन अधीनता स्वीकार कर चुके हैं। अबकी इन्हें पकड़कर इस राजधानीमें ही ले आऊँगा।—खदीजा, खदीजा!

[खदीजाका प्रवेश]

शाह०—खदीजा, दक्खिन चलनेकी तैयारी करो।

खदीजा—यह क्या!

शाह०—यह 'क्या' क्या? वहाँके राजाओंने फिर सिर उठाया है, उन्हें परास्त करनेके लिए जाना होगा।

खदीजा—तुम भी जाते हो?

शाह०—नहीं तो क्या तुम ऐसी रुस्तम हो गई हो कि अकेली ही जाकर दुश्मनोंको ठीक कर दोगी?—लैला होती तो शायद वह कुछ कर भी सकती।—हाँ खदीजा, मैं भी जाऊँगा। अब्बाने मुझे बुला भेजा है। मैं उन्हींके पास जा रहा हूँ।

खदीजा—नाथ! (शाहजहाँका हाथ पकड़ती है।)

शाह०—जाओ खदीजा, यह नारीके रसभरे रंगीन ओठों और चंचल कटाक्षोंके साथ क्रीड़ा करनेका समय नहीं है।—सामने कठोर कर्तव्य खड़ा है। (प्रस्थान)

खदीजा—(आँसू पोंछकर) नहीं, यह मेरी गल्ती है। पुरुषोंके लिए न जाने कितने काम हैं, वे न जाने कितना ज्ञान रखते हैं, और हम अभागिन स्त्रियोंने,—और कुछ नहीं सीखा, केवल प्यार करना ही सीखा है। (प्रस्थान)

शाह०—सेनापति महाबतखाँ मेवाड़को जीत चुके थे, उसके बाद अब्बाने मुझे मेवाड़से सन्धि करनेके लिए भेजा। मैंने जाकर सुलह की। किन्तु, प्रसिद्ध यह हुआ कि मैंने मेवाड़को जीता!

खुसरू—मगर महाबतखाँने इसका कुछ प्रतिवाद नहीं किया!

शाह०—यह उनकी उदारता है। वे उस सम्मानको नहीं चाहते। बल्कि, मालूम नहीं किस कारणसे, मेवाड़की जयके संबन्धमें वे अपनी बातको मानो दबाना ही चाहते हैं।

खुसरू—हाँ! यह मैं नहीं जानता था। सो, चाहे जो हो, उसके बाद राणाके साथ तुमने जो सन्धि की है, उसमें तुमने बड़ी ही उदारता दिखाई है। हारे हुएके साथ ऐसी सम्मानकी सन्धि शायद ही पहले कभी हुई हो।

शाह०—भाई साहब, देश काल और पात्र देखकर ही शक्तिका व्यवहार किया जाता है। मेवाड़का राजवंश एक बहुत पुराना नेकनाम राजवंश है।—जिस वंशमे बाप्पाराव, रानी चन्द्रावती, समरसिंह, प्रतापसिंहने जन्म लिया है, उसी वंशका आज पतन हुआ है। उसके दुःखपर जरा गौर तो करो! उसके उस दुःखके बोझको यथासंभव हलका करनेकी ही कोशिश मैंने की है।

खुसरू—खुर्रम, मैं तुमपर बड़ी श्रद्धा रखता हूँ और प्यार करता हूँ। मै भी तुम्हारे साथ दक्खिन चलूँगा, अगर तुम इसमें सहमत हो और अब्बा हुक्म दे दें तो।—मै युद्ध करना सीखूँगा।

शाह०—चलो, तो पहले अब्बाके पास चलें।

खुसरू—चलो।

शाह०—भाई साहब, आप चलें, मै आता हूँ।

(खुसरूका प्रस्थान)

शाह०—सेनापति महावतखाँ मेवाड़को जीत चुके थे, उसके बाद अब्बाने मुझे मेवाड़से सन्धि करनेके लिए भेजा। मैंने जाकर सुलह की। किन्तु, प्रसिद्ध यह हुआ कि मैंने मेवाड़को जीता!

खुसरू—मगर महावतखाँने इसका कुछ प्रतिवाद नहीं किया?

शाह०—यह उनकी उदारता है। वे उस सम्मानको नहीं चाहते। बल्कि, मालूम नहीं किस कारणसे, मेवाड़की जयके संबन्धमें वे अपनी बातको मानो दबाना ही चाहते हैं।

खुसरू—हाँ! यह मैं नहीं जानता था। सो, चाहे जो हो, उसके बाद राणाके साथ तुमने जो सन्धि की है, उसमें तुमने बड़ी ही उदारता दिखाई है। हारे हुएके साथ ऐसी सम्मानकी सन्धि शायद ही पहले कभी हुई हो।

शाह०—भाई साहब, देश काल और पात्र देखकर ही शक्तिका व्यवहार किया जाता है। मेवाड़का राजवंश एक बहुत पुराना नेकनाम राजवंश है।—जिस वंशमे बाप्पाराव, रानी चन्द्रावती, समरसिंह, प्रतापसिंहने जन्म लिया है, उसी वंशका आज पतन हुआ है। उसके दु:खपर जरा गौर तो करो! उसके उस दु:खके बोझको यथासंभव हलका करनेकी ही कोशिश मैंने की है।

खुसरू—खुर्रम, मै तुमपर बड़ी श्रद्धा रखता हूँ और प्यार करता हूँ। मैं भी तुम्हारे साथ दक्खिन चलूँगा, अगर तुम इसमें सहमत हो और अब्बा हुक्म दे दे तो।—मै युद्ध करना सीखूँगा।

शाह०—चलो, तो पहले अब्बाके पास चलें।

खुसरू—चलो।

शाह०—भाई साहब, आप चलें, मैं आता हूँ।

(खुसरूका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—लाहौरके शाही महलका अन्तःपुर

समय—रात

[भारी पोशाक और जड़ाऊ गहने पहने नूरजहाँ अकेले एक विशाल कमरेमें टहल रही है।]

नूर०—मैंने क्षमताकी मदिरा पी है! मैं हर रगमें उसकी गर्म उत्तेजनाका अनुभव कर रही हूँ!—यही तो जीवन है! केवल आत्म-रक्षा और जन्म दानके तन्त्र ही इस सृष्टिके महाचक्रको नहीं घुमा रहे हैं। इसमें आनन्द-भोग भी है! नहीं तो पक्षी इतने आवेगसे क्यों गा उठता है? वृक्ष इतने विचित्र पत्र-पुष्पोंसे क्यों विकसित हो उठता है? नदीके वृक्ष स्थलमें इतनी उछलती हुई फेन-पूर्ण तरंगे क्यों उठती हैं? आकाशमें चन्द्रमा इतना क्यों हँसता है? यदि भूख और प्यासका मिटना ही इस जीवनकी चरम लीला है, तो आहारके इतने सरस और स्वादिष्ट होनेका क्या प्रयोजन है? फूलोंकी सुगन्ध इतनी मधुर होनेका क्या अर्थ है? संगीत इतना मधुर क्यों हुआ? प्रतिभा केवल सत्य-राज्यका आविष्कार करके ही चुप नहीं है, वह कल्पनाके सुवर्ण-राज्यकी भी सृष्टि करती है।—यही तो यथार्थ जीवन है। मैं आज केवल जीवन धारण नहीं करती, मैं आज रग-रगमें जीवनका अनुभव कर रही हूँ।

[दासीका प्रवेश]

नूर०—क्या बाँदी?

दासी—बेगम साहबाके भाई मिलना चाहते हैं।

नूर०—आसफ?

दासी—हाँ।

नूर०—कह दो, इस वक्त फुर्सत नहीं है।—(कुछ सोचकर) अच्छा, ले आओ।

(दासीका प्रस्थान)

नूर०—अब्बाके मरनेके बाद एक ही इशारेमें उनका मन्त्री-पद आसफको दिला दिया है। क्षमताकी एक मधुरता यह है कि उसके एक कृपा-कटाक्षके लिए मनुष्य मुंह बाये रहता है। क्षमता लात मारकर जो अनुग्रह फेंक देती है उसे अक्षमता व्यग्रताके साथ हाथ बढ़ाकर उठा लेती है। क्षमतामें मोह अवश्य है।

[आसफका प्रवेश]

नूर०—क्या है आसफ ?

आसफ—इंग्लैण्डके राजदूत रो साहबने तुमसे फिर अनुरोध किया है।

नूर०—सूरतमें कोठी बनानेकी अनुमतिके लिए ?

आसफ—हाँ।

नूर०—अच्छा, मैं इस बारेमें सम्राट्से आज ही कहूँगी। कल भूल गई थी। कहना, वे चिन्ता न करें, चिन्ताका कोई विशेष कारण नहीं है।

(आसफका प्रस्थान)

नूर०—(टहलते टहलते) लेकिन मैंने अभी तक अपनी क्षमताका यथोचित व्यवहार नहीं किया। अब बदलेकी तैयारी करनी होगी। जिसके लिए सब कुछ खोया है, वही काम अब शुरू करना होगा।

[शाहजहाँका प्रवेश]

शाह०—सम्राज्ञी, क्या यहाँ अब्बा नहीं थे ?

नूर०—उनसे तुम्हें क्या मतलब है खुर्रम ?

शाह०—उन्होंने मुझे दक्खिन जानेकी आज्ञा दी है। उसीके बारेमें कुछ बातचीत करना चाहता था।

नूर०—वे यहाँ थे तो जरूर, पर कहीं चले गये हैं।

शाह०—खुसरू अपनी इच्छासे आप ही मेरे साथ जाना चाहता है।

नूर०—अच्छी बात है, तो उसे साथ लेते जाओ।

शाह०—पर सम्राट् अनुमति कैसे देंगे ?

नूर०—इस बारेमें मै सम्राटसे अनुरोध करूँगी।

शाह०—अच्छा, तो जानेकी आज्ञा दीजिए। (प्रणाम करता है)

नूर०—याद रहेगा ?

शाह०—रहेगा।　　(प्रस्थान)

नूर०—बाँदी !

[बाँदीका प्रवेश]

नूर०—मै आसफसे जरा फिर मिलना चाहती हूँ।

(बाँदीका प्रस्थान)

नूर०—इस खुर्रमको मै प्यार नहीं करती, बल्कि कुछ कुछ डरती हूँ। यह बातचीत कम करता है, इधर उधर नहीं देखता और मेरे ऊपर इसके हृदयमे एक प्रकारका दर्पपूर्ण अवज्ञाका भाव है। धीरे धीरे इसे भी मै दुनियासे खिसकाऊँगी। इस सारे ही परिवारको मैं अग्नि-कुण्डमे डालूँगी।

[आसफका प्रवेश]

नूर०—आसफ, मै एक बात कहनेको भूल गई थी। बंदरराजको आज्ञा दो कि मैं कल दिनको दोपहरके समय उससे मुलाकात करना चाहती हूँ।

आसफ—इस पाजी नीचसे तुम्हारा क्या मतलब है मेहर ? जो तुम्हारे स्वामीकी हत्या करनेवाला—

नूर०—(रूखी हँसी हँसकर) उसीके अनुग्रहसे तो मुझे आज यह सम्मान प्राप्त हुआ है !

शाह०—अच्छा, उन्हें खोजने जाता हूँ। (जाना चाहता है।)

नूर०—(सहसा) सुनो खुर्रम !

शाह०—(फिरकर) क्या आज्ञा है सम्राज्ञी !

नूर०—मै जानती हूँ कि तुम सम्राट्की आज्ञासे दक्खिन जा रहे हो वहाँके विद्रोहियोंका दमन करने। परन्तु सुनो, मै एक बातसे तुम्हें सावधान किये देती हूँ।

शाह०—किस बातसे ?

नूर०—खुर्रम, इस समय सम्राट्के प्रिय पुत्र तुम नहीं, शाहजादा खुसरू है।

शाह०—एक सन्तानकी अपेक्षा दूसरी सन्तानपर अगर पिताका स्नेह अधिक है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

नूर०—तुम सम्राट्के चतुर सेनापति हो, सम्राट्के दाहिने हाथ हो और दक्खिनके युद्धके महारथी हो। लेकिन भारतके भावी सम्राट् सम्राज्ञी रेवाके पुत्र शाहजादा खुसरू है।

शाह०—आपका यह गूढ़ इशारा मैं समझ नहीं सका बेगम साहबा!

नूर०—इसका समझना क्या इतना कठिन है ? तुम रहोगे दूर दक्खिनमें। हो सकता है कि विद्रोहियोको वश करनेमें दस बरस लग जायँ और तुमको वहीं रहना पडे। इधर सम्राट्के पास रहेंगे उनके आँखोंके अंजन, हृदय-रंजन, शाहजादा खुसरू। खुसरू मेरे कोई नहीं है, तुम मेरे भाई आसफके दामाद हो, इसीसे यह बात तुमको जता दी।

शाह०—आप क्या करनेके लिए कहती है ?

नूर०—मैं कहती हूँ, खुसरूको सम्राट्के पाससे दूर हटाये रक्खो, जिससे पीछे भारतका सम्राट् कौन होगा, इसका निर्णय तुम लोगोंकी खुदकी ताकतपर निर्भर रहे। इसमें अन्याय कुछ नहीं है।

शाह०—खुसरू अपनी इच्छासे आप ही मेरे साथ जाना चाहता है।

नूर०—अच्छी बात है, तो उसे साथ लेते जाओ।

शाह०—पर सम्राट् अनुमति कैसे देंगे ?

नूर०—इस बारेमे मै सम्राटसे अनुरोध करूँगी।

शाह०—अच्छा, तो जानेकी आज्ञा दीजिए। (प्रणाम करता है)

नूर०—याद रहेगा ?

शाह०—रहेगा।　　(प्रस्थान)

नूर०—बाँदी !

[बाँदीका प्रवेश]

नूर०—मै आसफसे जरा फिर मिलना चाहती हूँ।

(बाँदीका प्रस्थान)

नूर०—इस खुर्रमको मै प्यार नहीं करती, बल्कि कुछ कुछ डरती हूँ। यह बातचीत कम करता है, इधर उधर नहीं देखता और मेरे ऊपर इसके हृदयमे एक प्रकारका दर्पपूर्ण अवज्ञाका भाव है। धीरे धीरे इसे भी मै दुनियासे खिसकाऊँगी। इस सारे ही परिवारको मै अग्नि-कुण्डमे डालूँगी।

[आसफका प्रवेश]

नूर०—आसफ, मै एक बात कहनेको भूल गई थी। दंदरराजको आज्ञा दो कि मै कल दिनको दोपहरके समय उससे मुलाकात करना चाहती हूँ।

आसफ—इस पाजी नीचसे तुम्हारा क्या मतलब है मेहर ! जो तुम्हारे स्वामीकी हत्या करनेवाला—

नूर०—(रूखी हँसी हँसकर) उसीके अनुग्रहसे तो मुझे आज यह सम्मान प्राप्त हुआ है !

शाह०—अच्छा, उन्हें खोजने जाता हूँ। (जाना चाहता है।)

नूर०—(सहसा) सुनो खुर्रम!

शाह०—(फिरकर) क्या आज्ञा है सम्राज्ञी!

नूर०—मैं जानती हूँ कि तुम सम्राट्की आज्ञासे दक्खिन जा रहे हो वहाँके विद्रोहियोंका दमन करने। परन्तु सुनो, मैं एक बातसे तुम्हें सावधान किये देती हूँ।

शाह०—किस बातसे?

नूर०—खुर्रम, इस समय सम्राट्के प्रिय पुत्र तुम नहीं, शाहज़ादा खुसरू हैं।

शाह०—एक सन्तानकी अपेक्षा दूसरी सन्तानपर अगर पिताका स्नेह अधिक है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

नूर०—तुम सम्राट्के चतुर सेनापति हो, सम्राट्के दाहिने हाथ हो और दक्खिनके युद्धके महारथी हो। लेकिन भारतके भावी सम्राट् सम्राज्ञी रेवाके पुत्र शाहज़ादा खुसरू हैं।

शाह०—आपका यह गूढ़ इशारा मैं समझ नहीं सका बेगम साहबा!

नूर०—इसका समझना क्या इतना कठिन है? तुम रहोगे दूर दक्खिनमें। हो सकता है कि विद्रोहियोको वश करनेमें दस बरस लग जायँ और तुमको वहीं रहना पड़े। इधर सम्राट्के पास रहेंगे उनके आँखोके अंजन, हृदय-रंजन, शाहज़ादा खुसरू। खुसरू मेरे कोई नहीं है, तुम मेरे भाई आसफके दामाद हो, इसीसे यह बात तुमको जता दी।

शाह०—आप क्या करनेके लिए कहती है?

नूर०—मैं कहती हूँ, खुसरूको सम्राट्के पाससे दूर हटाये रक्खो, जिससे पीछे भारतका सम्राट् कौन होगा, इसका निर्णय तुम लोगोंकी खुदकी ताकतपर निर्भर रहे। इसमें अन्याय कुछ नहीं है।

शाह०—खुसरू अपनी इच्छासे आप ही मेरे साथ जाना चाहता है।

नूर०—अच्छी बात है, तो उसे साथ लेते जाओ।

शाह०—पर सम्राट् अनुमति कैसे देंगे?

नूर०—इस बारेमें मैं सम्राटसे अनुरोध करूँगी।

शाह०—अच्छा, तो जानेकी आज्ञा दीजिए। (प्रणाम करता है)

नूर०—याद रहेगा?

शाह०—रहेगा। (प्रस्थान)

नूर०—बाँदी!

[बाँदीका प्रवेश]

नूर०—मैं आसफसे जरा फिर मिलना चाहती हूँ।

(बाँदीका प्रस्थान)

नूर०—इस खुर्रमको मैं प्यार नहीं करती; बल्कि कुछ कुछ डरती हूं। यह बातचीत कम करता है, इधर उधर नहीं देखता और मेरे ऊपर इसके हृदयमें एक प्रकारका दर्पपूर्ण अवज्ञाका भाव है। धीरे धीरे इसे भी मैं दुनियासे खिसकाऊँगी। इस सारे ही परिवारको मैं अग्नि-कुण्डमें डालूंगी।

[आसफका प्रवेश]

नूर०—आसफ, मैं एक बात कहनेको भूल गई थी। चंद्रराजको आज्ञा दो कि मैं कल दिनको दोपहरके समय उससे मुलाकात करना चाहती हूँ।

आसफ—इस पाजी नीचसे तुम्हारा क्या मतलब है मेहर? जो तुम्हारे स्वामीकी हत्या करनेवाला—

नूर०—(रूखी हँसी हँसकर) उसीके अनुग्रहसे तो मुझे आज यह सम्मान प्राप्त हुआ है!

आसफ०—मगर—

नूर०—कुछ पूछो मत, उत्तर नहीं पाओगे !—जो कहूँ, वह किये जाओ ! स्त्री-चरित्रको समझनेकी चेष्टा मत करो, उसे नहीं समझ सकोगे ! जाओ ।

(आसफका प्रस्थान)

नूर०—एक ही शक्तिके बलसे ग्रह और उपग्रह अपनी नियमित कक्षामें घूमते हैं, और धूमकेतु महाशून्यको भेदकर चला जाता है। एक ही शक्तिके बलसे मेघ मीठे जलकी धारा बरसाते हैं, और हाहाकार करता हुआ वज्र आकाशसे पृथ्वीपर फट पड़ता है । एक ही शक्तिके बलसे बर्फ गलकर नद और नदियोंका रूप धारण कर पृथ्वीको हरी-भरी बनाता है और विराट् जल-प्रपातकी भारी चोट पृथ्वीके वक्षःस्थलको विदीर्ण भी कर देती है । (प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—दक्षिणमें रावणीदुर्ग

समय—रात

[शाहजहाँ और बन्दरराज खुसरूके सोनेके कमरेमें बातचीत कर रहे हैं ।]

शाह०—राजा, आप आ गये, अच्छा हुआ । मुझे आज इसी घड़ी एक युद्धमें जाना है । मैं सोच रहा था कि भाई साहबको किसकी देख-रेखमें छोड़ जाऊं । अब आपको ही सौंपकर चला जाऊँगा ।

राजा—बेशक, बेशक, इसमें सन्देह ही क्या है !

शाह०—वे कल रातको पागलोंकी तरह बक रहे थे ! कभी रोते थे, कभी सम्राट्को, कभी मुझे और कभी मेरी स्त्रीको बुरा-भला कहकर

झिड़कियाँ दे रहे थे। कभी भाग्यपर व्यंग्य करके हँसते थे!—इसी तरह उन्होंने रात बिताई है।

राजा—तो वे पूरे तौरसे पागल हैं?

शाह०—पागल नहीं हैं। कभी कभी उनकी यह हालत हो ही जाती है। पहले भी हो जाती थी। ऐसी अवस्थामें साधारण-से,—यहाँ तक कि किसी कल्पित कारणसे भी बहुत विचलित हो उठते हैं। दम-भरमें औरतोंकी तरह रोने लगते हैं। इस समय मैं उन्हें आपके हाथमें सौंपे जाता हूं।—आप देखिएगा।

राजा—इस बारेमें आप जरा भी चिन्ता न कीजिए शाहजादा साहब! मै आपके यहाँका पुराना सेवक हूँ।—बहुत ही अनुगत और आज्ञाकारी हूँ।

शाह०—इसीसे तो आपपर विश्वास करके भाई खुसरूको छोड़ जाता हूँ।

राजा—कुछ चिन्ता नहीं है शाहजादा। युद्धसे लौट आकर देखिएगा कि चिन्ता करनेका कोई कारण ही नहीं रहा है।

शाह०—अच्छी बात है। तो अब मै जाता हूं राजा साहब।

(प्रस्थान)

राजा—पहरेदार!

[पहरेदारका प्रवेश]

राजा—पहरेदार, किलेका फाटक बंद कर दो और मेरे आदमी करामतखाँको यहाँ भेज दो।

राजा—(टहल टहलकर) शाहजादा! इतनी बुद्धि तुममें है। एक ही निशानेमे दो चिड़ियाँ मारूँगा—इधर खुर्रमको बुरा करूँगा और उधर नूरजहाँको। नूरजहाँने तो अपना विचार मुँह खोलकर साफ साफ ही कह दिया था, मगर खुर्रम चूँकि खुसरूके सगे भाई हैं, इस

निठुर होता है! और मुझसे, जो अपनी इच्छासे तुम्हारे साथ आया यह निठुराई! मैं तुम्हें इतना प्यार करता हूँ कि तुम्हारे लिए अनायास अग्नि-कुण्डमें भी फाँद सकता हूँ!—ओ हो हो हो! कितने निठुर हो! कैसे निठुर! (रोता है)

(इसी समय खुसरूके पीछेसे हत्यारोंके साथ राजाका प्रवेश और इशारा करना। हत्यारे खुसरूकी पीठमें छुरा मारते हैं। खुसरू चित होकर गिर पड़ता है। हत्यारे छातीमें छुरा भोंक देते हैं। खुसरू धरतीपर गिरकर आर्तनाद करता है।)

खुसरू—(राजाकी ओर देखकर) इसलिए मुझे कैद कर रक्खा था खुर्रमने! अब समझा।—ओः—

राजा—काम तमाम हो गया! तुम जाओ—

(हत्यारोंका प्रस्थान)

खुसरू—तुम्हारा काम भी पूरा हो गया!—तुम भी जाओ—

(राजाका प्रस्थान)

खुसरू—खुर्रम! तुम सम्राट् होना चाहते हो; लेकिन मेरा खून किये बिना भी तुम सम्राट् हो सकते थे। खुर्रम! तुम्हारे इस ममताहीन क्रूर व्यवहारसे मुझे ऐसा कष्ट हुआ है कि मृत्युकी यन्त्रणा उसके आगे कुछ नहीं है! ओ हो हो हो!!—अच्छा अच्छा!—(मृत्यु)

चौथा दृश्य

स्थान—नूरजहाँका दरबार

समय—रात

[जहाँगीर, नूरजहाँ और आसफ बातें कर रहे हैं। जहाँगीरकी आँखें लाल हैं। वे आसफकी तरफ देख रहे हैं।]

आसफ—यह काम खुर्रमका नहीं। मैं खुर्रमको जानता हूँ। वे भाईकी हत्या कभी नहीं कर सकते। ऐसा होना असंभव है।

जहाँ०—यह हत्या खुर्रमने ही की है, इस बारेमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है। खुर्रमकी सम्मतिके बिना राजाकी क्या मजाल कि वह मेरे पुत्रकी हत्या करे!

आसफ—जहाँपनाह, राजाको दक्खिनमे खुर्रमने नहीं बुलाया था।

नूर०—आसफ, तुम अपने दामादको बचानेकी चेष्टा कर रहे हो, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। खुर्रम अगर तुम्हारा दामाद है, तो जहाँपनाहका पुत्र भी है; लेकिन जहाँपनाह न्याय-विचारके समय अपने पुत्रका भी पक्षपात नहीं करते, यह जगत्प्रसिद्ध बात है।

जहाँ०—निश्चय ही। मै न्याय-विचार करूंगा।

आसफ—खुदावन्द—

जहाँ०—मै और कुछ सुनना नहीं चाहता आसफ। मै इसी घड़ी खुर्रमको पत्र लिखता हूँ और इस मामलेकी कैफियत चाहता हूं। म अन्त तक इसकी जॉच करूंगा और खुर्रमको उचित दण्ड दूंगा।—अभागा खुसरू! अभागा! आज ही रातको पॉच सौ सवारोंके साथ खुर्रमके पास डाक रवाना करो। मै इसी घड़ी पत्र लिखता हूँ।

(प्रस्थान)

आसफ—मेहर, यह सब तुम्हारी सलाहसे हुआ है।

नूर०—आसफ, तुम मेरे भाई जरूर हो, लेकिन जब राज-काजके सम्बन्धमें बातचीत करो, तब याद रक्खो कि मै सम्राज्ञी हूँ और तुम मन्त्री। यह भी याद रक्खो कि अब्बाके मरनेके बाद यह मन्त्रीका पद मैंने ही तुम्हे दिलाया है।

आसफ—मेरा मन्त्री-पद! यह तो तुम्हारे स्वेच्छाचारका एक पर्दा भर है। हाय, किस बुरी घड़ीमें मैंने तुमसे सम्राज्ञी बननेके लिए कहा था!

नूर०—हाँ बनलाओ, क्यों कहा था? उस दिन मैंने कहा था कि 'सावधान!' लेकिन तुमने नहीं सुना। तुमने बाँध तोड़ दिया है! इस समय भीतर रुके हुए जलके जोरको हो सके तो रोक रक्खो; मुझमें तो वह शक्ति नहीं है। जाओ!

(आसफका प्रस्थान)

नूर०—आग जला दी है! अब वह खूब जले! खुसरू एक—समाप्त हो गया। खुर्रम दो—उसके लिए प्रयत्न शुरू है। उसके बाद परवेज तीन—अभी उसपर हाथ नहीं लगाया। उसके बाद यह साम्राज्य नूरजहाँ और उसकी बेटी लैलाका है।—सम्राज्ञी रेवा! तुम नक्षत्र हो सकती हो, पर अब मुझे यह देखना है कि कलंकी चन्द्रमाकी किरणोंके सामने तुम फीकी पड़ जाती हो या नहीं। मैंने जब अपनेको बेचा है, तब मैं अपना उचित मूल्य वसूल किये बिना न छोड़ूँगी। इसीके लिए मैंने सब खोया है। इसीके लिए मैं धर्मके पवित्र और उज्ज्वल राज्यसे नीचे गिरी हूँ। अब कोई बाधा न मानूँगी।

[रेवाका प्रवेश]

रेवा—सम्राज्ञी नूरजहाँ!

नूर०—कौन! सम्राज्ञी रेवा! (भयके साथ स्वगत) यह क्या! यह कैसी मूर्ति है!

रेवा—नूरजहाँ, तुमने मेरे पुत्रकी हत्या कराई है?

नूर०—मैंने?

रेवा—मैं तुमसे झगड़ा करने नहीं आई हूँ, तुम्हें झिड़की देने या भला-बुरा कहने भी नहीं आई हूँ। उससे मुझे कुछ लाभ नहीं। उससे अपने गये हुए पुत्रको अब मैं नहीं पा सकती। हाँ, केवल पूछने आई हूँ। तुमने मेरे पुत्र खुसरूकी हत्या की है?

नूर०—आपसे यह किसने कहा ?

रेवा—मेरे अन्तरात्माने । तो भी मैं निश्चिन्त होना चाहती हूँ । बोलो, सम्राट्से डरती हो ? मैं कसम खाती हूँ, सम्राट्से इस बारेमें एक अक्षर भी नहीं कहूँगी । तुमने खुसरूकी हत्या कराई है ?

नूर०—अगर कराई ही हो—

रेवा—(दम-भर चुप रहकर नूरजहाँकी ओर ताककर) तो नूरजहाँ, तुमने महापातक किया है । तुम नहीं जानतीं कि यह कैसा महा-पातक है । इसके सिवा पुत्र क्या चीज़ है, सो तुम नहीं जानतीं । (काँपते हुए स्वरमें) जिसका पुत्र नहीं रहा है उस माताकी वेदना तुम नहीं समझ सकतीं !

नूर०—बेगम साहबा, अगर—

रेवा—तर्क मत करो ! प्रतिवाद मत करो ! पश्चात्ताप करो !—मैंने अपना स्वामी, अपना साम्राज्य, अपना सब कुछ, तुम्हे दे दिया था; केवल पुत्रको रख छोड़ा था । वह भी तुमने छीन लिया ! मेरा और कोई नहीं है ! कोई नहीं है ! ओः—(दोनो हाथोंसे मुँह ढँक लेती है ।)

[लैलाका प्रवेश]

लैला—अम्मी !

नूर०—क्या है लैला ?

लैला—क्या यह सच है ?

नूर०—क्या सच है ?

लैला—तुमने शाहज़ादा खुसरूकी,—इनके पुत्रकी, हत्या कराई है ? यह सच है ?

नूर०—हाँ, सच है ।

नूर०—हाँ बतलाओ, क्यों कहा था? उस दिन मैंने कहा था कि 'सावधान!' लेकिन तुमने नहीं सुना। तुमने बाँध तोड़ दिया है! इस समय भीतर रुके हुए जलके जोरको हो सके तो रोक रक्खो; मुझमें तो वह शक्ति नहीं है। जाओ!

(आठफका प्रस्थान)

नूर०—आग जला दी है! अब वह खूब जले! खुसरू एक—समाप्त हो गया। खुर्रम दो—उसके लिए प्रयत्न शुरू है। उसके बाद परवेज तीन—अभी उसपर हाथ नहीं लगाया। उसके बाद यह साम्राज्य नूरजहाँ और उसकी बेटी लैलाका है।—सम्राज्ञी रेवा! तुम नक्षत्र हो सकती हो, पर अब मुझे यह देखना है कि कलंकी चन्द्रमाकी किरणोंके सामने तुम फीकी पड जाती हो या नहीं। मैंने जब अपनेको बेचा है, तब मैं अपना उचित मूल्य वसूल किये बिना न छोडूँगी। इसीके लिए मैंने सब खोया है। इसीके लिए मैं धर्मके पवित्र और उज्ज्वल राज्यसे नीचे गिरी हूँ। अब कोई बाधा न मानूँगी।

[रेवाका प्रवेश]

रेवा—सम्राज्ञी नूरजहाँ!

नूर०—कौन! सम्राज्ञी रेवा! (भयके साथ स्वगत) यह क्या! यह कैसी मूर्ति है!

रेवा—नूरजहाँ, तुमने मेरे पुत्रकी हत्या कराई है?

नूर०—मैंने?

रेवा—मैं तुमसे झगडा करने नहीं आई हूँ, तुम्हें झिड़की देने या भला-बुरा कहने भी नहीं आई हूँ। उससे मुझे कुछ लाभ नहीं। उससे अपने गये हुए पुत्रको अब मैं नहीं पा सकती। हाँ, केवल पूछने आई हूँ। तुमने मेरे पुत्र खुसरूकी हत्या की है?

नूर०—आपसे यह किसने कहा ?

रेवा—मेरे अन्तरात्माने। तो भी मैं निश्चिन्त होना चाहती हूँ। बोलो, सम्राट्से डरती हो ? मैं कसम खाती हूँ, सम्राट्से इस बारेमें एक अक्षर भी नहीं कहूँगी। तुमने खुसरूकी हत्या कराई है ?

नूर०—अगर कराई ही हो—

रेवा—(दम-भर चुप रहकर नूरजहाँकी ओर ताककर) तो नूरजहाँ, तुमने महापातक किया है। तुम नहीं जानतीं कि यह कैसा महापातक है। इसके सिवा पुत्र क्या चीज़ है, सो तुम नहीं जानतीं। (काँपते हुए स्वरमे) जिसका पुत्र नहीं रहा है उस माताकी वेदना तुम नहीं समझ सकतीं !

नूर०—बेगम साहबा, अगर—

रेवा—तर्क मत करो ! प्रतिवाद मत करो ! पश्चात्ताप करो !—मैंने अपना स्वामी, अपना साम्राज्य, अपना सब कुछ, तुम्हें दे दिया था; केवल पुत्रको रख छोड़ा था। वह भी तुमने छीन लिया ! मेरा और कोई नहीं है ! कोई नहीं है ! ओः—(दोनो हाथोंसे मुँह ढँक लेती है।)

[लैलाका प्रवेश]

लैला—अम्मी !

नूर०—क्या है लैला ?

लैला—क्या यह सच है ?

नूर०—क्या सच है ?

लैला—तुमने शाहज़ादा खुसरूको,—इनके पुत्रकी, हत्या कराई है ? यह सच है ?

नूर०—हाँ, सच है।

लैला—(आँखें फाड़कर) नूरजहाँ बेगम, क्या यह भी संभव है? सम्राज्ञी रेवाके इकलौते बैटेको तुमने मरवा डाला ? जिस रेवाने तुम्हें साम्राज्य दान कर दिया,—हाँ दान ही कर दिया, राजा जैसे भिक्षुकको भिक्षा देता है, उसी तरह तुमको यह साम्राज्य जिन्होंने दे डाला,—उन्हीं रेवाके इकलौते बेटेको—ओः ! अम्मी, तुम नहीं जानतीं कि तुमने क्या किया है !

नूर०—बदला लिया है ।

लैला—बदला !—यही बदला है ! इस अभागिनीके इकलौते पुत्रकी हत्या करवाकर बदला ?—इनकी ओर जरा आँख उठाकर तो देखो ! कल ये जवान थीं और आज देखो, इनके सब बाल पक गये हैं, मस्तकपर गहरी रेखाये देख पड़ने लगी हैं और दोनो आँखोंके नीचे गहरी स्याही छा गई है ! अम्मी !—शैतानी ! तूने यह क्या किया—

(लैलाका स्वर काँपने लगता है ।)

नूर०—तुमने ही तो लैला, मुझसे शैतानी बननेके लिए कहा था ।

लैला०—हाँ, कहा था । लेकिन तब मै क्रोधके मारे अपने आपेसे बाहर हो रही थी । मेरी उस कमजोरीसे लाभ उठाकर तुमने शहरयारके साथ मेरा ब्याह कर दिया । लेकिन अन्तको,—ना, मै इस बातको सोच नहीं सकी थी । (रेवासे) अभागिन मा मेरी, यह मेरा काम नहीं है । ईश्वर जाने, मै ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकी थी ! (नूरजहाँसे) अम्मी, तुम क्या थीं और क्या हो गई ?

नूर०—लैला—

लैला—नहीं अम्मी, अब नहीं । तुम्हारे साथ मेल किया था, लेकिन अब नहीं । आजसे मेरी राह अलग, तुम्हारी राह अलग । तुम

लैला—(आँखें फाड़कर) नूरजहाँ बेगम, क्या यह भी संभव है? सम्राज्ञी रेवाके इकलौते बेटेको तुमने मरवा डाला? जिस रेवाने तुम्हें साम्राज्य दान कर दिया,—हाँ दान ही कर दिया, राजा जैसे भिक्षुकको भिक्षा देता है, उसी तरह तुमको यह साम्राज्य जिन्होंने दे डाला,—उन्हीं रेवाके इकलौते बेटेको—ओः! अम्मी, तुम नहीं जानतीं कि तुमने क्या किया है!

नूर०—बदला लिया है।

लैला—बदला!—यही बदला है! इस अभागिनीके इकलौते पुत्रकी हत्या करवाकर बदला?—इनकी ओर जरा आँख उठाकर तो देखो! कल ये जवान थीं और आज देखो, इनके सब बाल पक गये हैं, मस्तकपर गहरी रेखायें देख पड़ने लगी हैं और दोनो आँखोंके नीचे गहरी स्याही आ गई है! अम्मी!—शैतानी! तूने यह क्या किया—

(लैलाका स्वर काँपने लगता है।)

नूर०—तुमने ही तो लैला, मुझसे शैतानी बननेके लिए कहा था।

लैला०—हाँ, कहा था। लेकिन तब मैं क्रोधके मारे अपने आपेसे बाहर हो रही थी। मेरी उस कमजोरीसे लाभ उठाकर तुमने शहरयारके साथ मेरा ब्याह कर दिया। लेकिन अन्तको,—ना, मैं इस बातको मान नहीं सकी थी। (स्वगत) अभागिन मा मेरी, यह मेरा काम नहीं है। उसके नाते, मैं ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकी थी। (नूरजहाँसे) अम्मी, तुम क्या थीं और क्या हो गईं?

नूर०—लैला—

लैला—नहीं अम्मी, अब नहीं। तुम्हारे साथ मेल किया था, लेकिन अब नहीं। आजसे मेरी राह अलग, तुम्हारी राह अलग। तु

अमीर०—हाँ जनाब।

शाह०—यह हत्या निश्चय सम्राज्ञी नूरजहाँकी आज्ञासे हुई है।

अमीर०—सम्राज्ञीकी ?

शाह०—हाँ, सम्राज्ञीकी। अब सब समझमें आ रहा है। मैं देखता हूँ, वह औरत हम सबको एक एक करके हटाना चाहती है। उसका पहला शिकार हुआ बदनसीब खुसरू। उसके बाद मेरी बारी है।

अमीर०—उसके बाद आपकी शाहज़ादा ?

शाह०—निश्चय ही। नहीं तो वह औरत खुसरूकी हत्याके लिए मुझे अपराधी ठहराकर मुझसे कैफियत न माँग भेजती।

अमीर०—नहीं, यह कैफियत खुद सम्राट् जहाँगीरने माँग भेजी है।

शाह०—वे तो अब नामको ही बादशाह हैं। बादशाहत नूरजहाँ कर रही है। मैं उस औरतकी आज्ञा नहीं मानता। मैं कैफियत नहीं दूँगा।

अमीर०—लेकिन—

शाह०—इसमें लेकिन वेकिन कुछ नहीं। इसके लिए अगर विद्रोह करना पड़े तो वह भी करूँगा।

अमीर०—शाहज़ादा साहब, आज्ञा हो तो एक निवेदन करूँगा।

शाह०—नहीं। अमीरअली, मैं उस औरतकी हुकूमत नहीं मानूँगा, कैफियत नहीं दूँगा। और पिताने जब साम्राज्य नूरजहाँके हाथमें ही सौंप दिया है, तब सम्राट् खुर्रम है नूरजहाँ नहीं। मैं कैफियत नहीं दूँगा। जाओ, मैं अभी पत्र लिखे देता हूँ। अमीरअली, सम्राट्के पास पत्र ले जानेके लिए तैयार हो जाओ। (अमीरअलीका प्रस्थान)

खुद हत्या कराके मेरे सिर भाईकी हत्याका महापातक लादती है ! कैसा असहनीय साहस है ! पिता तो इस प्रकार औरतके जालमें फँस गये हैं; उनका अब निस्तार नहीं ! लेकिन मैं उन्हें इसके जालसे निकालूँगा,—उनकी रक्षा करूँगा ।

[खदीजाका प्रवेश]

शाह०—खदीजा, मैंने विद्रोह किया है । अब मैं भारतका सम्राट् हूँ ।

खदीजा—यह क्या नाथ, विद्रोह !

शाह०—हाँ विद्रोह, अब मैं सम्राट्से युद्ध करूँगा ।

खदीजा—नाथ, साम्राज्यके लिए पितासे युद्ध करोगे ?

शाह०—पिताके साथ नहीं खदीजा, नूरजहाँके साथ । जरा ठहरो, मैं पत्र लिखकर दे आऊँ । इतनी मजाल ! (प्रस्थान)

खदीजा—साम्राज्य ! बाहरकी सम्पत्तिके लिए मनुष्य तो हाय-हाय किया करता है । यह नहीं देखता कि हरएक मनुष्यके हृदयके भीतर बहुत-सी अतुल सम्पत्तियाँ अनादरके साथ पड़ी हुई हैं । उनकी कोई परवा ही नहीं करता है । बाहर सुखके लिए इतनी तैयारी है, परन्तु भीतर सुखका समुद्र भरा है,—उधर ध्यान ही नहीं है । सुख अपने हाथके ही पास है; इतना निकट और इतना सहज है, तो भी हमारे संसारके मनुष्य अन्धोंकी तरह उसे टटोलते फिरते हैं ! सिर्फ प्रेम करके,—केवल प्यार करके ही,—मनुष्य सुखी हो सकता है ।

(प्रस्थान)

लैला—बेचारे खुर्रम! तुम्हें भी कूट-चक्रमें डाला है! तुम भी मारे जाओगे! उसके बाद परवेजकी ओर, स्वामी, फिर शायद तुम्हारी बारी आवेगी।

शहर०—क्या कह रही हो लैला!

लैला—नहीं, तुम्हें न मारेंगे।—तुम बेचारे बिलकुल गऊ हो। उनकी समझमें तुम्हारे प्राणोंसे बारूदका मूल्य अधिक है।

शहर०—मुझे कौन मारेगा?—मुझे क्या कोई मारना चाहता है?

लैला—यही बात सोच रही थी।

शहर०—नहीं, मैं मरना नहीं चाहता लैला। मुझे इस पृथ्वीसे बड़ा ही प्रेम है। ऐसा आकाश, ऐसी हवा, ऐसी सूर्यकी किरणें, ऐसी चाँदनी—फूलोंकी महक, पक्षियोंका संगीत, नदीकी लहरें, पहाड़ोंकी ऊँचाई—मुझे इस पृथ्वीसे बड़ा ही प्रेम है।

लैला—(गहरी अनुकंपाके भावसे) बेचारे मेरे स्वामी! नहीं शाह-ज़ादे, वे तुम्हें नहीं मारना चाहते। तुम्हें मारनेसे क्या होगा?

शहर०—अगर मारना चाहें, तो तुम मुझे बचा लोगी?

लैला०—हाँ, मैं अपने हृदयमें छिपाकर तुम्हारी रक्षा करूँगी। तुम्हें कुछ डर नहीं है।

[दासीका प्रवेश]

दासी—हुजूर कहाँ है शाहज़ादी?

लैला—क्यों?

दासी—खबर देना है कि शाही दीवान स्वर्गवासी हो गया।

लैला—शाही दीवान!

दासी—हाँ जनाब।

लैला—सो तो मैं पहले ही जानती थी। सम्राट् यहाँ नहीं आये।

(दासीका जल्दीसे प्रस्थान)

लैला—अभागिनी पुत्र-शोकसे मर गई! पृथ्वीपरसे एक गौरव उठ गया! एक प्रकाश, एक सुन्दर संगीत, एक प्रार्थना—

(धीरेसे प्रस्थान)

शहर—ना, वे मुझे नहीं मारेंगे!

[परवेजका प्रवेश]

परवेज—शहरयार!

शहर०—कौन? भाई परवेज? तुम युद्धसे कब लौट आये?

पर०—आज ही आया हूँ।

शहर०—युद्धकी क्या खबर है? खुर्रम कहाँ है?

पर०—बरहमपुरके युद्धमें हारकर मेवाड़की तरफ भाग गये हैं।

शहर०—मेवाड़की तरफ?—क्यों?

पर०—जान पड़ता है, मेवाड़के राणासे आश्रय माँगने। वे पिताके कठोर न्याय-विचारका हाल जानते हैं। इसके सिवा उनपर यह दारुण अभियोग लगाया गया है कि उन्होंने ही खुसरूकी हत्या कराई है। इससे उन्होंने पिताकी अधीनता स्वीकार करनेकी अपेक्षा राणाकी शरणमें जाना अधिक पसंद किया।

शहर०—तुम जानते हो भाई, यह अभियोग बिल्कुल मिथ्या है। भाई खुसरूकी मौतके लिए खुर्रम दोषी नहीं है।

पर०—तो फिर कौन दोषी है।

शहर०—सुनोगे, दोषी कौन है? (चारों ओर देखकर धीरेसे) दोषी हैं सम्राज्ञी नूरजहाँ।

पर०—यह कैसे ? तुमने किस तरह जाना ?

शाहर०—अच्छा तो सुनो भाई। एक दिन मेरी स्त्री तेजीके साथ उन्मत्त भावसे आँधीकी तरह मेरे कमरेमें घुस आई। उसकी आँखें लाल थीं। उसने आते ही रूखे स्वरमें कहा 'कसम खाओ कि मै सम्राट् नहीं बनूंगा।' मैं बीमारीकी हालतमे पलंगपर पड़ा हुआ था। उसने मेरा हाथ ज़ोरसे पकड़कर कहा 'कसम खाओ, कसम खाओ, कसम खाओ, कसम खाओ!' क्रम क्रमसे उसका स्वर ऊँचेसे भी ऊँचा होने लगा। अन्तको वह स्वर मानों एक हाहाकारके समान सुन पड़ा। उसका सारा शरीर थरथराने लगा। मुझे डर मालूम हुआ। मैंने कसम खाई कि कभी सम्राट् न बनूँगा। तब वह मेरी छातीपर सिर रखकर रोने लगी। फिर शान्त होनेपर उसने इस हत्याका इतिहास कहा।

पर०—उन्होंने जाना किस तरह ?

शाहर०—उसकी माने यह दोष स्वीकार कर लिया है।

पर०—स्वीकार कर लिया है! किसके आगे ?

शाहर०—सम्राज्ञी रेवाके आगे और उसके बाद मेरी स्त्री लैलाके आगे।

पर०—इतना बड़ा कुचक्र ?

शाहर०—भाई, सम्राज्ञीने मुझे भी अपने कुचक्रके बीच खींचा है, इससे मै बहुत डर गया हूँ।

पर०—पर तुम्हारा अपराध क्या है ? जाओ, तुम जाकर सोओ। ठंडकमे मत ठहरो। (प्रस्थान)

शाहर०—ओः, मेरा सिर घूम रहा है—(प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुर

समय—प्रातःकाल

[राणा कर्णसिंह, उनके सामने और शाहजहाँ खड़े हैं।]

शाह०—राणा साहब, मैंने दक्खिनसे जाकर पहले दिल्लीपर चढ़ाई की। वहाँ महाबतखाँसे हारकर मैं दक्खिनकी ओर भाग गया। इसके बाद नर्मदाके युद्धमें फिर महाबतखाँसे हारा और वहाँसे बंगालकी ओर भागकर मैंने उस देशको जीता।

कर्ण०—भागते भागते!

शाह०—हाँ राणा साहब। वहाँसे भगाया जाकर मैं मानिकपुर गया। वहाँसे हारकर फिर दक्खिनको गया। वहाँ भी पीछा करके महाबतखाँने मुझे भागनेके लिए लाचार किया। फिर मैं बंगालको भागा। फिर रोहतासगढ़में परिवारको रखकर और अपनी सारी सेना लेकर मैंने बहरमपुरपर चढ़ाई की। महाबतखाँने वहाँ भी मुझे हराया।

कर्ण०—शाहजादा, तुम्हारी शक्ति अद्भुत है!

शाह०—बल्कि यह कहिए राणा साहब, कि महाबतखाँका युद्ध-कौशल अद्भुत है।

कर्ण०—महाबतखाँके विरुद्ध आपने इतने दिन तक युद्ध किया, यह भी कुछ कम अद्भुत नहीं है।

शाह०—इसका कारण यही है कि मैंने सामने जाकर बहुत कम युद्ध किया है। नर्मदा-युद्धकी हारके बाद मैंने जंगली युद्ध करना शुरू कर दिया। उसमें भी हारकर अन्तको फिर सामनेसे युद्ध किया। किन्तु इस आखरी मर्त्तबा मैंने अपना सब कुछ गवाँ दिया। इसीसे आज निरुपाय होकर मैं मेवाड़के राणासे आश्रय माँगने आया हूँ।

कर्ण०—उदार-हृदय खुर्रमको मेवाड़ अपना अन्तिम रक्त-बिन्दु देकर बचावेगा।—तुम्हारी क्या राय है सामन्तो ?

सामन्तगण—राणाकी जो राय है, वही हमारी भी है।

कर्ण०—देशके लिए प्राण देना महत्कार्य है, लेकिन धर्मके लिए प्राण देनेसे बढ़कर महत्कार्य और कुछ नहीं है।—आश्रितको प्राण देकर बचाना क्षत्रियका धर्म है,—क्या कहते हो सामन्तो ?

सामन्त—अवश्य।

कर्ण०—शाहज़ादा खुर्रम, आप निश्चिन्त रहिए। मेवाड़ अपना सर्वस्व देकर भी आपकी रक्षा करेगा। यद्यपि मेवाड़ आज वह मेवाड़ नहीं है, मेवाड़का सर्वस्व नष्ट हो चुका है, उसकी शक्ति भी क्षीण हो चुकी है, वह दुर्दशामे पड़ा है, मगर दुर्दिनमें भी मेवाड़ मेवाड़ है। जब तक मेवाड़मे एक भी राजपूत रहेगा, तब तक आप अपनेको निर्भय समझिए।

शाह०—अगर सम्राज्ञी नूरजहाँकी सेना मेवाड़पर चढ़ाई करे ?

कर्ण०—शाहजादा, मै कह चुका हूँ कि मेवाड़ अपना अन्तिम रक्त-बिन्दु तक देकर आश्रितकी रक्षा करेगा।—भाई भीमसिंह, मेवाड़में जितने योद्धा है, उन्हे तैयार होनेकी आज्ञा दे रक्खो। शाहजादेके लिए सम्राट्से युद्ध करनेको तैयार हो रहो। सेना सज्जित करो।

आठवाँ दृश्य

स्थान—नूरजहाँका दरबार

समय—प्रातःकाल

नूर०—कैसा विश्वास-घात है! हारे हुए और मुगलोंको कर देनेवाले मेवाड़के राणा कर्णसिंह हमारे विरुद्ध होकर,—विद्रोही खुर्रमका पक्ष लेकर,—लड़े!

नूर०—तब भी, जबतक आप सम्राट् हैं तबतक कमसे कम न्याय-विचारके एक अभिनयकी ही सही, ज़रूरत है । उसके बाद आप चाहें तो खुर्रमको छुटकारा दे सकते हैं । जहाँपनाहके न्याय-विचारके ऊपर प्रजाका अगाध विश्वास है । उसे इस समय इस तरह विचलित होने देना उचित नहीं । एक बार वह खुले आम होना चाहिए । उसके बाद छोड़ दीजिएगा, कुछ हर्ज नहीं ।

जहाँ०—अच्छी बात है । इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं ।

नूर०—और मैं खुद उस न्याय-विचारके करनेकी आज्ञा चाहती हूँ; सिर्फ अपनी मर्यादाकी रक्षाके लिए । खुर्रमने अपने पत्रमे सम्राट्के निकट मुझे दोषी ठहराया है,—मेरा अपमान किया है, इसलिए मर्यादाकी रक्षाके लिए उसे छोड़नेका सम्मान सम्राट् मुझे दें ।

जहाँ०—अच्छी बात है, लेकिन उस समय मैं मौजूद रहूँगा ।

नूर०—(मुसकराकर) देखती हूँ, नूरजहाँके ऊपर सम्राट्को पूरा विश्वास नहीं है । अच्छा, ऐसा ही हो ।

जहाँ०—लो, वह खुर्रम आ गया !

(मन्त्री, उमराव, सेनापतिगण, महाबतखाँ आदिके साथ शाहजहाँ दरबारमें प्रवेश करता है और सम्राट्को प्रणाम करता है । सम्राट् सिंहासनसे उठते हैं; परन्तु नूरजहाँ उनकी ओर कठोर दृष्टिसे देखती है और वे फिर सिंहासनपर बैठ जाते हैं ।)

जहाँ०—खुर्रम, इस राजधानीमे हम तुम्हारा स्वागत करते हैं ।

शाह०—(सम्राट्की ओर देखकर) सम्राट्का अनुग्रह !

नूर०—तब भी तुम अपराधी हो; पहले तुम्हारा विचार होगा ।

शाह०—मेरा विचार होगा ?

नूर०—हाँ, तुम्हारा विचार होगा । तुम्हारे विरुद्ध क्या क्या अभियोग हैं, सो तुम जानते हो ?

शाह०—नहीं । (विस्मयके साथ प्रश्नमयी दृष्टिसे जहाँगीरकी तरफ देखता है ।)

नूर०—क्या किसीकी भी हिम्मत नहीं है ?

महा० —(जहाँगीरसे) सम्राट्, आप मुझे बाँध लीजिए। मैं कुछ नहीं कहूँगा। (हाथ आगे बढा देता है।)

जहाँ०—महाबतखाँ, तुम्हे बाँधनेकी जंजीर अब भी तैयार नहीं हुई। जाओ महाबत, मैं तुम्हे माफ करता हूँ।

नूर०—(खडे होकर) कभी नहीं, सम्राज्ञी नूरजहाँ या तो इस समुद्रमे डूबेगी और या इस समुद्रकी छातीको पैरोंसे रौंधकर चली जायगी। वह इसकी लहरोंके द्वारा इधर-उधर पटके जानेके लिए जीती नहीं रहेगी। महाबतखाँको गिरफतार करनेकी ताकत किसीमें नहीं है तो मैं गिरफ्तार करूँगी। देखूँ, भारत-सम्राज्ञी नूरजहाँको रोकनेकी ताब किसमे है ! (सिंहासनसे उतर पडती है)

[लैला तेजीसे प्रवेश करती है।]

लैला—वह ताब, वह ताकत, मुझमे है।

(सब सन्नाटेमे आ जाते हैं।)

लैला—सम्राट्, इस सिंहासनपर एक अपाहिजकी तरह बैठकर आप सम्राज्ञीके स्वेच्छाचारको देख रहे हैं और कुछ नहीं कहते ! पुरुषकी इतनी अधोगति ! धिक्कार है ! (शाहजहाँकी तरफ फिरकर) शाहजादा, जब सम्राट्ने तुम्हें क्षमा कर दिया है, इसलिए तुम छुटकारा पा चुके और महाबतखाँ, तुमने अपने योग्य ही काम किया है। जाओ, तुम भी छुटकारा पा गये हो, सम्राट्ने खुद कह दिया है।—और नूरजहाँ, मैं तुमको इस आम दरबारमें शाहजादा खुसरूकी हत्याके अपराधमें अभियुक्त करती हूँ। यदि तुमसे बन सके, तो अस्वीकार करो

(दोनों तनी दो शेरनियोंकी तरह एक दूसरीको ज्वालामयी दृष्टिसे देखती हैं।)

१ मु०—उसे मारकर मैं अपनी गर्दन देनेको तैयार हूँ। साला पाजी ! जंगली सियार !

४ मु०—नहीं, जंगली सियार नहीं। वह कुत्ता है !—वाह कैसी अच्छी उपमा तुमने दी है हुसैन—एकदम ठीक कुत्ता है !

२ मु०—वे मन्त्रीजी आ रहे हैं।—

[आसफका प्रवेश]

४ मु०—क्यों मन्त्रीजी, बादशाहने आज कुछ नया हुक्म जारी किया है ?

आसफ—हाँ किया है। बादशाहका हुक्म है कि आज रातको आप लोग खूब शराब पियें और आनन्द मनावें।

४ मु०—सुभान अल्लाह ! इस हुक्मके माने हैं, और वे साफ समझमे आ रहे हैं।

आसफ—मगर—

४ मु०—देखो, इसमें अगर मगर करोगे, तो मैं चिल्ला दूँगा।

आसफ—' मगर ' इसके भीतर नहीं, इसके बाहर है।

२ मु०—वह ' मगर ' क्या है ?

आसफ—लेकिन जान पड़ता है, आप लोग उस ' मगर ' को पसंद न करेंगे। लेकिन वह ' मगर ' खूब है।

३ मु०—कैसे ?

४ मु०—' मगर ' है या कुछ और ?

आसफ—' मगर ' है।

३ मु०—तो वह ' मगर ' कह ही डालो। जोरसे खाँड़ा चलाओ। हम गर्दन झुकाये हुए हैं।

आसफ०—तो यह 'मगर' सुनो। सम्राट्ने खुद कान छिदाये हैं, और कुण्डल पहने हैं। साथ ही हुक्म दिया है कि सब मुसाहबोंको कान छिदाकर कुण्डल पहनने होंगे। नहीं तो आप लोगोंको दरबारमें आनेका हुक्म नहीं है।

२ मु०—सो कैसे ?

आसफ०—कैसे क्या ! ऐसे ही।

३ मु०—ना ना. दिल्लगी है। क्यों आसफ, दिल्लगी है ?

आसफ—तो लो यह बादशाहका आज्ञापत्र देखो।

(आज्ञापत्र दिखाता है।)

१ मु०—यह लो.—कहता था कि नहीं ! सम्राट् ऐसे अपदार्थ न होते तो वह पाजी राजा महाराजा हो जाता !

२ मु०—कभी नहीं।

१ मु०—यह तो बहुत ही गड़बड़ हुआ। हम अगर कान छिदाकर कुण्डल-बाली-बाले पहनना शुरू करेंगे, तो घरके भीतर-वालियाँ क्या करेंगी !

२ मु०—जान पड़ता है, कानमें कलमें खोंसेंगी।

१ मु०—देखना है कि वह हुक्म भी कब जारी होता है।

२ मु०—नहीं. यह तो बेकायदे मनमाना हुक्म है।

३ मु०—तो फिर अब और क्या होगा। चलो, कान छिदावें। बादशाहकी आज्ञा ही जो है।

१ मु०—कभी नहीं। हम लोग विद्रोह करेंगे। गुलाम लोग ही कान छिदाते हैं.—यह बड़ा भारी अपमान है।

४ मु०—हाँजी. बिल्कुल मनमाना हुक्म है।

२ मु०—बेशक।

आसफ—क्या करेंगे, निश्चय कर लिया ?—कान छिदावेंगे, या विद्रोह करेंगे ?

१ मु०—तुम ठट्ठा कर रहे हो। सम्राट्के मन्त्री होकर एकदम—

२ मु०—हाँ, मन्त्री हुए हो सम्राट्के साले होनेके जोरसे। मैं भी अगर सम्राट्का साला होता !

आसफ—पर साले बननेमे देर कितनी-सी लगती है !

दूसरा दृश्य

स्थान—नूरजहाँका कमरा

समय—रात

[नूरजहाँ अकेली खडी है।]

नूर०—यह भी एक नशा है। करीब करीब क्षमताके शिखरपर पहुँच गई हूँ, तथापि और भी ऊपर चढना चाहती हूँ। मगर नूरजहाँ ! सावधान ! तुम आज उस शिखरकी कगारपर खडी हो। सावधान !—लेकिन यह क्यो ? सावधान किसके लिए ?—भय काहेका है ? किसके लिए सोचूँ ? मेरी कन्या—जिसके लिए इतनी चेष्टा की, इतना कुचक्र रचा, वह भी मेरा विरोध कर रही है। अब किसके लिए दुविधामे पडू ? आज सब बन्धन काटकर बाहर निकली हूँ। इस विशाल ससारमे आज मै अकेली हूँ। अब किसका डर है ? काहेके लिए डर है ?—दो घोडा दौडा दो नूरजहाँ ! गिरनेकी परवाह मत करो ! या तो जय होगी, या फिर मृत्यु ही होगी। अब तो मै भी अपनेको लौटानेमे असमर्थ हूँ।

[आसफ और जहाँगीरका प्रवेश]

जहाँ०—नूरजहाँ, मन्त्रीका खयाल है कि यदि महाबतखाँसे कैफियत माँगी जायगी तो वे कैफियत न देंगे।

नूर०—क्या करेगे ?

आसफ—सम्राट्का हुक्म न मानेंगे, शायद विद्रोह करेंगे।—सम्राज्ञी, राज्य एक परिवारके तुल्य है। राजा पिता है और प्रजा-जन उसकी सन्तान हैं। राजा अगर उनके साथ स्नेहका व्यवहार करता है तो वे भी उसपर स्नेह रखते हैं। अगर राजा उनकी नाकमें दम करता है, तो वे भी राजाको तंग करते है।

नूर०—करें, इससे मैं नहीं डरती। मैं जानती हूं, विद्रोहीका सिर कैसे कुचलना चाहिए।

जहाँ०—नूरजहाँ, सिपाहियोंके ऊपर महाबतखाँका बहुत बड़ा प्रभाव है। उसे देखकर तुमने ही प्रस्ताव किया था कि उसे सेनापतिके पदसे हटाकर बंगालका सूबेदार बना दो। इसीसे मैंने उसे शाहजादा परवेजकी मातहतीमें बंगालका सूबेदार बनाकर भेज दिया। अब देखता हूं कि तुम्हें उसमें भी आपत्ति है।

नूर०—आपत्तिका कारण न होता तो मैं कभी आपत्ति न करती, जहाँपनाह। महाबत उड़ीसा जीतकर सोने चाँदी हाथी ले गया है। लेकिन अब तक उन्हें आगरे भेजनेकी जरूरत ही उसने नहीं समझी। लूटका धन सम्राट्की सम्पत्ति है,—सेनापतिकी नहीं।

आसफ—हाथी भेजनेका समय अभी बीत नहीं गया है!

नूर०—बीत नहीं गया! आसफ, तुम [illegible] पक्षका [illegible] कर रहे हो। मैं यहाँ बैठे बैठे देख रही हूं कि महाबत [illegible] सम्राट्की प्रभुताको बिना किसी [illegible] अमान्य कर रहा है,—[illegible] पाकर बंगालमें विद्रोहके [illegible] हो रहा है।

जहाँ०—[illegible] असम्भव है।

नूर०—[illegible] कुछ नहीं है, जहाँपनाह। [illegible]
[illegible] है,—[illegible] सिर [illegible]! [illegible]

जहाँ०—तुम्हारा जो जी चाहे वही करो। मैं सोच नहीं सकता और सोचना चाहता भी नहीं।

नूर०—अच्छी बात है।—मन्त्री, तुम उसके पास आज्ञा भेजनेका बन्दोबस्त करो। मैं अपने हाथसे आज्ञापत्र लिखे रखती हूँ।

आसफ—सम्राट्की क्या आज्ञा है?

जहाँ०—जाओ आसफ,—क्यों हैरान करते हो?

[आसफका चुपचाप प्रस्थान]

जहाँ०—प्रिये, अपने इस साम्राज्यका शासन तुम करो। अब मेरा साम्राज्य,—सुरा, सौन्दर्य और संगीत चलने दो।

नूर०—जो आज्ञा जहाँपनाह!—बाँदी!

[दासीका प्रवेश। नूरजहाँ उसे इशारा करती है। वह चली जाती है। इतनेहीमें पर्दा एकदम उठ जाता है और अपूर्व उज्ज्वल आभूषणोंसे भूषित नाचनेवालियाँ प्रकाशके एक उच्छ्वासकी तरह सम्राट्के सामने आ जाती हैं।]

नूर०—देखिए जहाँपनाह!—

जहाँ०—बस, यही मेरा साम्राज्य है।—परियो, नाचो—गाओ!

[बाजा बजता है। नाच शुरू होता है। मदिरा आती है। नूरजहाँ अपने हाथसे रत्न-पात्रमें मदिरा ढालकर जहाँगीरको देती है और वह पीता है।]

जहाँ०—सुखके कैसे अच्छे झरनेका आविष्कार किया है! आनन्दका कैसा सुन्दर यन्त्र तैयार किया गया है! गाओ।

नाचनेवालियाँ गाती हैं—

बहार—जल्द तिताला

आओ हिल-मिलकर नाचें गावें ॥ आओ० ॥
गहरी गरज मृदंग बजें, पग घुँघरू घने बजाय रिझावें ॥ आओ०
हम सब सुन्दर हृदय-हारिणी नट-नारी कौशल दरसावें।
हास्य लास्यसे हाव भावसे चिन्ता चितकी दूर भगावें ॥ आओ०
ताल ताल संगीत उठे, फिर घन स्वर जाल गानके छावें।
झमते बनकर शोक-विनीरव तान. शून्यमें लय हो जावें ॥ ..

जहाँ०—यह न करनेसे भी काम चल सकता था !

(पत्र लौटा देते हैं।)

नूर०—काम चल सकता था ! साम्राज्यकी एक साधारण प्रजा ऐसी बात कह सकती है कि सम्राट् उसके प्राणोंकी रक्षाके लिए क्या जामिन देते हैं ? वह इस तरहका दावा और इस तरहकी भाषाका व्यवहार करता है, इसका कारण यही है कि सम्राट्ने उसे बहुत अधिक मुँह चढ़ा रक्खा है।

जहाँ०—नूरजहाँ, तुम तो साम्राज्यके सम्बन्धमें मुझसे इस तरह बातचीत करती हो कि मैं जैसे दूध-पीता बच्चा हूँ, और तुम जैसे द्वितीय बहरामखाँ हो। नूरजहाँ, महाबतखाँ साम्राज्यकी एक साधारण प्रजा नहीं है। वह सज्जन, आत्माभिमानी और क्षमताशाली है,—उसमें ये तीन भयानक गुण हैं। याद रक्खो।

नूर०—अगर सम्राट्का मुझपर विश्वास न हो तो राज्यकी बागडोर सम्राट् फिर अपने हाथमें ले ले।

जहाँ०—नहीं प्रिये, मैंने जो छोड़ दिया, उसे फिर नहीं लौटा लेना चाहता। साम्राज्य मिट्टीमें मिल जाय, मुझे कुछ भी क्षोभ न होगा।

(नूरजहाँ सन्नाटेमें आकर खड़ी रहती है।)

नूर०—क्या हुआ स्वामी ! ऐसा कुछ हुआ है क्या जिससे मेरे प्रभु मुझपर नाराज़ हो गये हैं ?

जहाँ०—तुम्हारे ऊपर नाराज होऊँगा ! मैं !—हे जादूगरनी, मुझे अपने किस मोहन-मन्त्रसे मुग्ध कर रक्खा है ! हे काली [illegible] तुमने अपनी किस ज़हरीली साँससे मुझे शिथिल कर रक्खा [illegible] मैं मग्न हो रहा हूँ [illegible] सकता, निकल नहीं सकता

नूर०—चुप। मैं तुमसे सलाह नहीं लेना चाहती। मेरी आज्ञाका पालन करो। महाबतखाँसे कहो, सम्राट्की आज्ञा है कि तुम इसी घड़ी पंजाबको रवाना हो जाओ। मुलाकातकी ज़रूरत नहीं है।

(प्रस्थान)

आसफ—भारतवर्षका वर्तमान इतिहास एक स्त्रीके आचाररहित स्वेच्छाचारका इतिहास बनता जा रहा है।

[जहाँगीरका प्रवेश। आसफ बन्दगी करता है।]

जहाँ०—क्या खबर है आसफ?

आसफ—सम्राज्ञीके पास आज्ञा लेने आया था।

जहाँ०—किस बारेमें?

आसफ—सम्राज्ञीकी यह आज्ञा देख लीजिए तो फिर और कुछ कहनेकी जरूरत न होगी।

(जहाँगीर पत्र पढ़कर चुपचाप लौटा देता है।)

आसफ—जहाँपनाह, इस आज्ञाका पालन करना होगा?

जहाँ०—अवश्य।—जाओ।

(आसफका प्रस्थान)

जहाँ०—नूरजहाँ, तुमने बड़ी ही तेज़ीसे घोडा दौड़ा दिया है!

(नूरजहाँ प्रवेश करके सम्राट्को बन्दगी करती है।)

नूर०—सम्राट् यहाँ है!

जहाँ०—नूरजहाँ तुमने महाबतको मुझसे मिलने भी नहीं दिया!

नूर०—नहीं, क्यों नहीं मिलने दिया, सुनिएगा? पढ़िए यह महाबतखाँका पत्र।

(जहाँगीर पत्र लेकर पढता है।)

नूर०—उसने अपने दामादके हाथ यह पत्र भेजा था। इतनी उसकी मजाल! मैंने उसके दामादको सिर मुडाकर, गधेपर चढ़ाकर, उसीके पास भेज दिया है।

जहाँ०—यह न करनेसे भी काम चल सकता था!

(पत्र लौटा देते हैं।)

नूर०—काम चल सकता था! साम्राज्यकी एक साधारण प्रजा ऐसी बात कह सकती है कि सम्राट् उसके प्राणोंकी रक्षाके लिए क्या जामिन देते हैं! वह इस तरहका दावा और इस तरहकी भाषाका व्यवहार करता है, इसका कारण यही है कि सम्राट्ने उसे बहुत अधिक मुँह चढ़ा रक्खा है।

जहाँ०—नूरजहाँ, तुम तो साम्राज्यके सम्बन्धमें मुझसे इस तरह बातचीत करती हो कि मैं जैसे दूध-पीता बच्चा हूँ, और तुम जैसे द्वितीय बहरामखाँ हो। नूरजहाँ, महाबतखाँ साम्राज्यकी एक साधारण प्रजा नहीं है। वह सज्जन, आत्माभिमानी और क्षमताशाली है,—उसमें ये तीन भयानक गुण हैं। याद रक्खो।

नूर०—अगर सम्राट्का मुझपर विश्वास न हो तो राज्यकी बागडोर सम्राट् फिर अपने हाथमें ले लें।

जहाँ०—नहीं प्रिये, मैंने जो छोड़ दिया, उसे फिर नहीं लौटा लेना चाहता। साम्राज्य मिट्टीमें मिल जाय, मुझे कुछ भी क्षोभ न होगा।

(नूरजहाँ सम्राटके आकर खड़ी रहती है।)

नूर०—क्या हुआ स्वामी! ऐसा कुछ हुआ है क्या जिससे मेरे प्रभु मुझपर नाराज हो गये हैं!

जहाँ०—तुम्हारे ऊपर नाराज होऊँगा! मैं!—हे जादूगरनी, तुमने मुझे अपने किस मोहन-मन्त्रसे मुग्ध कर रक्खा है! हे काली नागिन! तुमने अपनी किस जहरीली साँससे मुझे शिथिल कर रक्खा है! मैं तुममें मग्न हो रहा हूँ, उठ नहीं सकता, निकल नहीं सक-

तोड़कर बाहर निकल आया हूं। अबकी मैं दिखाऊंगा कि अभीतक जो मैं मुगलोंको पक्षमें रहा सो अपने धर्मका खयाल करके,—मुगलोंकी शक्तिसे नहीं।

शाह०—महाबतखाँ, मै तुम्हारे इस क्रोधका कारण समझ रहा हूं। अब्बा सम्राज्ञीके हाथका खिलौना हो रहे हैं और सम्राज्ञी एक मनमाना काम करनेवाली औरत है। उसके नियम-हीन राज्यमें रहना किसी भी स्वाभिमानी व्यक्तिके लिए असंभव है। इसीसे मैं भी उदयपुरके राणाका मेहमान होकर ठहरा हुआ हूँ। यदि तुम उस औरतको नीचा दिखाया चाहो,—दमन किया चाहो,—यहाँतक कि अगर इस स्वेच्छाचारके राज्यको मिटाकर फिर हिन्दू-साम्राज्यकी स्थापना करना चाहो, तो उससे भी मुझे सहानुभूति है। बल्कि इस उद्देश्यको पूरा करनेमें तुम्हारी सहायता भी कर सकता हूँ।

महा०—शाहजादा, आप महत् और उदार हैं।—राणा साहब, छह महीनेके लिए इस सेनामेंसे पाँच हजार राजपूत घुड़सवारोंको अपने अधीन रखनेका अबाध अधिकार मैं आपसे माँगता हूँ।

शाह०—इन पाँच हजार सैनिकोंको लेकर तुम क्या करोगे महाबत?

महा०—सम्राट्से भेट करूंगा। वे मुझसे भेट करना नहीं चाहते; मगर मैं उनसे भेंट करूंगा।—राणा साहब, मैं और कुछ तनख्वाह नहीं चाहता। यह मेरी पेशगी तनख्वाह है। इतने अनुग्रहके लिए मैं आपके चरणोंमे जन्म-भर बिका रहूंगा।

कर्ण०—मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है, मेवाड़-सेनापति।

महा०—वर्तमान सेनापति कौन है?

कर्ण०—(विजयसिंहको दिखाकर) ये हैं। इनका नाम विजयसिंह

महा०—विजयसिंह, तुम पाँच हज़ार राजपूत सवार चुन लो। ऐसे सवार चुन लो जो जय प्राप्त किये बिना कभी युद्धके मैदानसे न लौटें। जो मुँहसे कहते बहुत कम हों, पर इशारेपर प्राण दे सकते हों।

कर्ण०—जो आज्ञा सेनापति।

महा०—जो लोग इशारेपर प्राण दे सकें विजयसिंह!—राणा साहब, अब मुझे विश्राम करनेके लिए अनुमति दीजिए। मैं बहुत थका हुआ हूँ।

कर्ण०—विजयसिंह, इन्हें विश्राम-स्थानमें ले जाओ। इनकी सब तरहसे खातिर करनेका प्रबन्ध मैं तुम्हें सौंपता हूँ।—जाओ।

महा०—जो लोग इशारेपर प्राण दे सकते हों! समझे विजय-सिंह?—राणा साहब, जो अपनी इज़्ज़तको जानसे बढ़कर समझता है उसकी इज़्ज़तमें कभी बल नहीं आता। आदाब—

(महाबतखाँ और उनके पीछे विजयसिंहका प्रस्थान)

कर्ण०—शाहज़ादा साहब!

शाह०—राणा साहब!

कर्ण०—अब मेरी समझमें आ गया कि हिन्दू-जातिका पतन क्यों हुआ?

शाह०—क्यों हुआ?

कर्ण०—जब देखता हूँ कि महाबतखाँके समान धर्मात्मा, कर्मवीर व्यक्तिको कुछ आचार-भेदके कारण हम अपना कहकर जातिके भीतर लेकर गले नहीं लगा सकते, तब समझमें आ जाता है कि हम लोगोंकी यह गिरी हुई दशा क्यों है। जहाँ जीवन है, वहाँ वह बाहरकी चीजको खींचकर अपना लेता है; और जहाँ मरण है, वहाँ वह खुद सौ

नूर०—गजबका साहस है इस महाब्बतखाँका! केवल पाँच हजार सेना लेकर इतनी बड़ी मुगल-सेनापर चढ़ाई करना बेशक बड़े ही साहसका काम है!—वह काहेका शब्द है?

(एक सिपाही घबड़ाया हुआ-सा प्रवेश करता है।)

सैनिक—बेगम साहबा, हमारी सारी राजपूत-सेना महाब्बतखाँसे मिल गई है।

नूर०—मिल गई है?

सैनिक—हाँ जहाँपनाह! वह युद्धमें एकाएक 'जय महाब्बतखाँकी' कहकर चिल्ला उठी। उसके बाद सबकी सब महाबतखाँकी सेनामें जाकर मिल गई।

(पुलके बीचका हिस्सा जल उठता है।)

नूर०—सम्राट् अभी तक उसी पार हैं?

सैनिक—हाँ खुदावन्द।

नूर०—आगे बढ़ो—क्यों आसफ?—

आसफ—(प्रवेश करके) सम्राज्ञी, राजपूत-सेना महाबतखाँकी सेनासे मिल गई है।

नूर०—सो सुन चुकी हूँ। और कुछ?

आसफ—राजपूत-सेनाने आग लगाकर पुल जला दिया है। उस पार जानेका कोई उपाय नहीं है।

नूर०—सम्राट् उस पार हैं।

आसफ—हाँ, वे उस पार हैं?

नूर०—तैरकर उस पार जाओ और आक्रमण करो।

आसफ—सम्राज्ञी—

नूर०—बस, आक्रमण करो।

(आसफका प्रस्थान)

(सैनिक जलमें फाँदकर तैरने लगते हैं। महावतखाँकी सेना पुल छोड़कर किनारेपर जाकर उनपर गोलियाँ बरसाती है।)

नूर०—(हाथीवानसे) महावत, हाथी बढ़ाओ, उस पार चलो।

महा०—खुदावन्द—

नूर०—बढ़ाओ—

(पर्दा बदलता है।)

अन्य दृश्य

स्थान—सिंधुके किनारे सम्राट्का डेरा

समय—प्रभात

[द्वारके पास दो पहरेदार खड़े हैं।]

दोनों—यह क्या है ? यह सब क्या है ?

(दो सैनिक घबराये हुए प्रवेश करते हैं।)

दोनों—सैनिक—यही खीमा है !—(पहरेदारोंसे) बादशाह सलामत कहाँ हैं ?

१ पह०—क्या हुआ ! बाहर यह इतना शोर-गुल काहेका है ?

१ सै०—बादशाह कहाँ हैं ? जल्द बताओ।

१ पह०—क्या हुआ, पहले सुनें तो ?

२ सै०—राजपूत-सेनाने शाही डेरेपर धावा कर दिया है।

१ पह०—यह क्या ! कौन राजपूत-सेना ?

२ पह०—कितनी सेना है ?

२ सै०—पाँच हजार। जाओ, बादशाह सलामतको अभी खबर दो।

१ पह०—और हमारी सेना क्या कर रही है ?

१ सै०—सब उस पार है ।

२ पह०—उसने खबर नहीं पाई ?

२ सै०—पाई है ।—जाओ, पहले बादशाहको खबर दो। अब समय नहीं है !

१ पह०—मैं बुलाता हूँ बादशाहको । (प्रस्थान)

२ पह०—हमारी सेना इस पार कितनी है ?

१ सै०—एक हजारसे अधिक न होगी ।

१ पह०—वह सब क्या कर रही है ?

१ सै०—लडती है, मरती है, और क्या करेगी ? राजपूतोंकी सेना पागल हो रही है और खुद महाबतखॉं उसके सेनापति हैं। (नैपथ्यमे बन्दूककी आवाज सुन पडती है ।) वे—वे—

२ सै०—वे आ गये ।

(युद्ध करते करते महाबतखॉंकी सेना और सम्राट्की सेना प्रवेश करती है । अपनी सेनाके पीछे खुद महाबतखॉं हैं ।)

महा०—बस, अब हत्या मत करो । (राजपूतोंके रुक जानेपर) मुगल सिपाहियो, हथियार रख दो । नहीं तो वृथा तुम्हारी हत्या करनी पडेगी । मै तुम्हारे प्राण नहीं लेना चाहता । मैं सम्राट्को चाहता हूँ । अगर प्राण प्यारे है,—हथियार रख दो ।

(सम्राट्की सेना हथियार रख देती है ।)

महा०—अब सम्राट्को बुलाओ ।

[जहॉंगीरका प्रवेश]

जहॉं०—यह सब गोलमाल काहेका है ?—यह क्या ! महाबतखॉं ?

महा०—हॉं, जहॉंपनाह ।

जहॉं०—महाबत, इसके माने ! मामला क्या है ! इस वेषमें ! इस तरह !

महा०—मैंने देखा, नहीं तो सम्राट्के दर्शन मिलना असंभव है। माफ़ कीजिएगा जहाँपनाह, मैं इस उपायका सहारा लेनेके लिए लाचार हुआ हूँ। सम्राज्ञीने जब कहला भेजा कि महाव्रतखाँको सम्राट्के दर्शन नहीं मिलेंगे तब महाबतखाँने प्रतिज्ञा की कि वह दर्शन जरूर ही करेगा। मैं जानता हूँ जहाँपनाह, कि अनुनय-विनयकी अपेक्षा युक्तिका ज़ोर अधिक है, लेकिन तोपकी आवाज़के आगे कोई भी नहीं ठहरता,—न अनुनय-विनय और न युक्ति।

जहाँ०—मेरी सेना कहाँ है?

महा०—सब उस पार है। वह इस पार नहीं आ सकती जहाँपनाह। उसकी आशा न कीजिएगा। मैंने बीचका पुल जला दिया है।

जहाँ०—ओ.!—समझा। महाबत, तुम्हारी यह ढिठाई मैंने माफ़ कर दी। अपनी सेनाको विदा कर दो। चुप क्यों हो?

महा०—जहाँपनाह, ये लोग मेरे जीवनकी रक्षाके लिए उचित जामिन लिये बिना जाना नहीं चाहते।

जहाँ०—तुम्हारा मतलब क्या है?

महा०—मेरा मतलब जहाँपनाहके दिलमें यह बात बैठा देना है कि महाबतखाँ जहाँपनाहका पालतू कुत्ता नहीं है कि आप जब 'तू' करके बुलावेंगे तब वह दुम हिलाता हुआ चला आवेगा, और जब लात मारकर दुतकार देंगे, तब वह दुम दबाकर भाग जायगा।

जहाँ०—(भौंहें टेढ़ी करके) महाबत, बेशक मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। क्या जामिन चाहते हो, बोलो?

महा०—कुछ नहीं। जहाँपनाह, शिकारके लिए जानेका समय हो गया है। चलिए। इसका विचार फिर पर किया जायगा।

महा०—सम्राट् विचार कर चुके। हुक्म दीजिए—दस्तखत कीजिए।

(जहाँगीर चुपचाप दस्तखत कर देते हैं।)

महा०—विजयसिंह, जाओ, यह आज्ञा सम्राज्ञीके डेरेपर ले जाकर उन्हें दिखा दो और उसके बाद तुम खुद इस आज्ञाका पालन करो। फिर दुबारा आज्ञाकी जरूरत नहीं है।

(विजयसिंहका आज्ञा लेकर प्रस्थान)

महा०—यही तो सम्राट् जहाँगीरके योग्य न्याय-विचार है।—जहाँपनाहने जब तक स्वयं शासन किया, तब तक शत्रु भी उसके विरुद्ध कुछ कह नहीं सके। क्योंकि वह शासन न्याय-संगत था। उसके विरुद्ध इस सम्राज्ञीके प्रभावने सम्राट्के उज्ज्वल यशको राहुकी तरह ग्रस लिया। बंदेका काम है, उस यशको ग्राससे छुड़ाना। हम अपने सम्राट् जहाँगीरको फिर प्राप्त करना चाहते है। उसके बाद मेरा काम समाप्त हो जायगा।

[विजयसिंहका प्रवेश]

विजय०—सम्राज्ञी मरनेसे पहले एक बार सम्राट्से मुलाकात करना चाहती है।

(जहाँगीर महाबतखाँके मुँहकी ओर देखते हैं।)

महा०—विजयसिंह, मुलाकात किस लिए?—पूछ आओ।

(विजयसिंह जाता है। जहाँगीर चुपचाप
जमीनकी ओर निहारते रहते हैं।)

महा०—मालूम नहीं, सम्राज्ञी नूरजहाँने किस जादूके बलसे जहाँपनाहकी न्याय-निष्ठाको ग्रास कर रक्खा था। मगर वह मोह, वह मेघ, जब हट जायगा, तब जहाँपनाह ही मुझे धन्यवाद देंगे—यह मैं जानता हूँ।

हत्या और सम्राट् शेरकी मृत्यु भी जब मैंने चुपचाप सह ली, तब तुम समझ सकती हो नूरजहाँ, कि ये दस्तखत मेरे नहीं हैं। मेरे हाथने ये दस्तखत किये जरूर हैं, लेकिन असलमें ये दस्तखत महाबतखाँके ही हैं।

नूर०—(महाबतखाँकी ओर देखकर) समझ गई! अब मुझको कुछ कहना नहीं है। महाबतखाँ, तुम जीते।—जब तुमने जहाँगीरके हाथसे नूरजहाँकी मृत्युकी आज्ञापर दस्तखत करा लिये,—जो पृथ्वीपर कोई नहीं करा सकता था,—तब मेरी पूरी तरह हार हो गई। (महाबतखाँकी ओर जरा सिर झुकाकर) मगर याद रक्खो महाबतखाँ, इस जयमें तुम्हारा कुछ गौरव नहीं है।—मैं एक दुर्बल स्त्री ही तो हूँ। तुम वीर हो, तुम पुरुष हो। और मै चाहे जो हूँ, स्त्री ही हूँ। इस जयमें तुम्हारा कुछ पौरुष नहीं है। मै सिर झुकाकर अपनी हार स्वीकार करती हूँ। (जहाँगीरसे) तो जाती हूँ नाथ,—इस जीवनके राज्यसे मरणके देशमे, इस आलोकके लोकसे अन्धकारके गढ़ेमें, इस उत्सवके मन्दिरसे सन्नाटेके जगत्में। विदा होती हूँ—प्राणेश्वर!

(घुटने टेकती है।)

नूर०—(नूरजहाँको उठाकर और छातीसे लगाकर) नूरजहाँ,—मेरे जीवनका प्रकाश! मेरे हृदयकी अधीश्वरी! मेरे इस जगत्का सर्वस्व!

नूर०—प्रियतमके प्रेमका प्रकाश मेरी मृत्युके मार्गको प्रकाशित करे!—प्राणेश्वर, मै मरनेको नहीं डरती। किन्तु सच बात यह है कि मेरी मरनेकी इच्छा न थी। कौन मरना चाहता है? जो सदा रोगी रहता है, जो चिर-निर्वासित है, जिसका संसारमें कोई नहीं है—कुछ नहीं है, जिसे लोगोंने छोड़ दिया है, जिससे,—अभिशाप देकर,—

समझमें नहीं आता। घटा उठ रही है, राह खोजे नहीं मिलती।—नूरजहाँ! बस, अब क्यों बढ़ी जाती हो! लौटो! अब भी लौटो!—ना, अब लौट नहीं सकती। पहाड़की ऐसी जगहपर आ गई हूँ कि यहाँसे चढ़नेकी बनिस्बत उतरना खौफनाक है। चलो, चलो, आगे बढ़ो नूरजहाँ! अब भी शिखरपर चढ़ सकती हो! शतरंजके खेलमें वजीर गवाँ दिया है; तो भी जीत सकती हो। खेले जाओ।

दूसरा दृश्य

स्थान—काबुलका रास्ता

समय—शामका झुटपुटा

[महाबतखाँ मार्गके किनारे खड़े दूर ताक रहे हैं।]

महा०—अन्तको एक साम्राज्यका बोझ मेरे सिर आ पड़ा। यह तो मैंने चाहा नहीं था। इस ऐश्वर्यने आज एक जजीरकी तरह मुझे बाँध रखा है। यह तंग कोठरीके पत्थरकी दीवारकी तरह मानो मेरी साँसको बंद कर रहा है। घृणित कीड़ेकी तरह मानो मेरे शरीरपर रेंग रहा है। तो भी इसे छोड़नेका उपाय नहीं है। कैसा भारी बोझ है! तो भी इसे लादना होगा। बदला लेना चाहा था, सो ले लिया। किन्तु अब एक बड़े भारी कर्तव्यका बोझ मेरे सिरपर आ पड़ा है। राह चलते चलते यह साम्राज्य हाथ लग गया है। इसका पालन करना होगा। राक्षसीके ग्राससे इसे बचाना होगा। पर सूर्य अस्त हो गया।—मै भी खीमेमें जाऊँ। (जाना चाहते हैं कि इसी समय कई-एक लुटेरे आकर राह रोक लेते हैं।)

महा०—कौन हो तुम लोग?

१ लुटे०—हम काबुली है।

तीसरा दृश्य

स्थान—सम्राट्का शिविर

समय—रात

[अकेली नूरजहाँ]

नूर०—हम सब इस संसारके खेलकी पुतलियाँ हैं। संसार कभी अत्यन्त आदर करके हमें गोदमें उठा लेता है और कभी अवहेलाके साथ पृथ्वीपर फेंक देता है। संसार हमारी हँसी और रोनेपर वैसे ही ध्यान नहीं देता जैसे बालक अपने खिलौनेके आनंद और रूठनेको समझ नहीं सकता। लेकिन, खिलौनेको गोदमें लेनेसे क्या वह सचमुच ही नहीं हँसता ? और घरके कोनेमें फेंक देनेसे क्या सचमुच ही उसे दुःख नहीं होता ? अथवा यह बात है कि मनुष्यके सुखःदुखपर ईश्वर ध्यान नहीं देता। उसकी सृष्टिके महान् उद्देश्यके बीच इनके लिए स्थान ही नहीं है। उसके भारी कारखानेमें मनुष्यका सुख-दुख, उससे निकली हुई चिनगारियों और धूम-राशिकी तरह है।—उधर उसका लक्ष्य ही नहीं है। काल-चक्रकी लीला विश्व-घटना-मार्गको दलित करती चली जाती है,—विश्वकी वेदनाकी ओर उसकी दृष्टि नहीं है।

[जहाँगीरका प्रवेश]

जहाँ०—यह काहेका शोरो-गुल है!—एक भयंकर कोलाहल तुम्हें सुन पड़ता है न नूरजहाँ ?

नूर०—हाँ,सुन पड़ता है। जानते है जनाब, यह काहेका शोर है ?

जहाँ०—काहेका है ?

नूर०—यह मृत्युका आर्त्त-नाद है। महाबतखाँकी आज्ञासे काबुलियोंकी हत्या हो रही है।

जहाँ०—काबुलियोंकी हत्या ! क्यों ?

(कई औरतें दौड़ती हुई आकर जहाँगीरके पैरोंपर गिर पड़ती हैं।)

औरतें—जहाँपनाह, रक्षा कीजिए,—रक्षा कीजिए।

जहाँ०—महाबत !

(महाबत खड़े होते हैं।)

औरतें—हमारे बच्चोंको बचाइए।

जहाँ०—औरतो, सम्राट् ये नहीं हैं, (महाबतको दिखाकर) सम्राट् ये हैं।

औरतें—(महाबतखाँके पैरोंपर गिरकर) जहाँपनाह, हम भिक्षा माँगती हैं,—हमारे बच्चोंको बचाइए। बदलेमें हमारी जान ले लीजिए।

महा०—फरीद, जाओ, इस हत्या-काण्डको बंद कर दो। कहो, सम्राट्की आज्ञा है!—महाशयो, जाइए। हत्या बंद होनेकी आज्ञा मैंने भेज दी है।

(फरीद और औरतोंके साथ उमराव लोगोंका प्रस्थान)

महा०—शेरअली !

शेर०—जनाब !

महा०—खीमे उखाड़ो, सम्राट् अजमेरको लौट जायँगे; इस बर्बर जातिके नगरमें प्रवेश नहीं करेंगे।

(शेरअलीका प्रस्थान। महाबतखाँ वहीं टहलने लगते हैं।)

जहाँ०—(कुछ देर चुप रहकर) महाबत !

महा०—जहाँपनाह !

जहाँ०—यह पिस्तौल लो, मुझे मार डालो। अब यह नहीं सहा जाता।

महा०—समझ गया जहाँपनाह; मेरा इस तरह बे-रोक-टोक आ[illegible] देना जहाँपनाहको पसंद नहीं आ सकता,—यह जानता हूँ। मगर

जहाँ०—सच है। उमराव लोगो, सेनापतिके ऊपर अत्याचार हुआ है। इनसे क्षमा-प्रार्थना करो। इस बारेमें मुझे कुछ अधिकार नहीं है।

१ उम०—सेनापति, तो आप इन पुर-वासियोंकी रक्षा कीजिए।

महा०—महाशयो, यह बहुत अच्छी बात है! मेरी ही हत्याका षड्यंत्र रचकर, अन्तको निष्फल होकर, अब आप लोग मुझसे ही कृपाकी भिक्षा माँगने आये हैं! मेरी इस राजपूत-सेनाके पाँच सौ जवानोंने आप लोगोंका क्या बिगाडा था?

१ उम०—हम लोग इसका हाल कुछ नहीं जानते।

महा०—आप लोग कुछ नहीं जानते?

२ उम०—सचमुच हम कुछ नहीं जानते। हमारी बातपर विश्वास कीजिए।

महा०—विश्वास नहीं होता।

३ उम०—वह आर्त्त-नाद सुनिए। वह देखिए, उस नगरके कोनेमे धुआँ उठ रहा है। आपके सिपाही हम लोगोंके घरोंमें आग लगा रहे है।

महा०—बहुत ठीक कर रहे हैं।

४ उम०—सोचिए तो,—जिनकी हत्या हो रही है उनमें कितनी ही बेचारी औरतें, कितने ही धर्मात्मा वृद्ध, कितने ही असहाय बच्चे हैं। उन्होंने तो कुछ अपराध नहीं किया!

महा०—करें या न करें, इससे कुछ मतलब नहीं। आप लोग लौट जाइए। प्रार्थना करना निष्फल है।

४ उमराव—(जहाँगीरके आगे घुटने टेककर) जहाँपनाह!

(जहाँगीर हाथोंसे मुँह ढँक लेते हैं।)

यह समझें कि मैं सम्राट्के अभिभावकके रूपसे आज्ञा देता हूं। खुद सम्राट् नहीं बन बैठा हूँ।

नूर०—सम्राट् और किसे कहते हैं महाबतखाँ? तुम विश्वास-घात करके, हमें हमारे घरसे निकालकर, भीतरसे हमारे सामने ही घरका द्वार बंदकर, उसी घरके भीतर सिंहासनपर बैठ गये हो। तुम नमक-हरामी करके, स्वामी और सेवकके सम्बन्धको उलट-पलटकर, हमारे ऊपर हुक्म चला रहे हो। तुम सम्राट् अकबरके पुत्र जहाँगीरको अपना कैदी बनाकर उसके नामसे स्वेच्छाचार कर रहे हो,—मनमाने हुक्म जारी कर रहे हो।—सम्राट् और किसे कहते हैं महाबतखाँ?

[महाबतखाँ चुप रहते हैं।]

जहाँ०—तो भी जब तक तुम न्याय-शासन करते रहे तब तक महाबतखाँ, मैंने कुछ भी नहीं कहा। मेरे शासनको अन्याय-शासन कहकर मेरे हाथसे तुमने उसे ले लिया था,—तो भी—

महा०—आज्ञा कीजिए सम्राट्, तो भी—

जहाँ०—तो भी मैंने ऐसा अन्याय कभी नहीं किया। मैंने एकके अपराधमें अनेककी हत्याका हुक्म कभी नहीं दिया। मैंने न्याय-विचारमें अपनी प्राणोंसे भी प्यारी बेगमके लिए मृत्यु-दण्डकी आज्ञापर दस्तखत कर दिये थे। फिर तुमसे मैंने,—सम्राट्ने,—हाथ जोड़कर प्राणोंकी भिक्षा माँग ली थी। और तुम्हारा,—तुम्हारा यही न्याय-विचार है! मैं सम्राट् होकर यह अन्याय-विचार देख रहा हूँ!—कुछ उपाय नहीं! नहीं महाबत, मुझे मार डालो। भारत-सम्राट् जहाँगीर घुटने टेककर तुमसे प्राण-दण्डकी भिक्षा माँगता है।

(महाबतको पिस्तौल देते हैं।)

आसफ—हाँ, बहुत कठिन है।

कर्ण०—आपको महाबतखाँकी कुछ खबर मिली है?

आसफ—उडती हुई खबर है कि एकाएक राज्य छोडकर फकीर होकर वे कहीं चल दिये है।

कर्ण०—आश्चर्य है! इस महाबतखाँका चरित्र मुझे एक पहेली-सा जान पडता है।

आसफ—मैं उन्हे कुछ कुछ जानता हूँ। वे पत्थरकी तरह कठिन होनेपर भी फूलसे भी बढकर कोमल हैं। उनका न्याय-विचार वज्रके समान दृढ होता है। मगर स्त्री-जातिके एक बूँद आँसूमे पसीज उठता है।

[इसी समय फकीरके वेशमे महाबतखाँ प्रवेश]

आसफ—तुम कौन? यह क्या!—महाबतखाँ है?

महा०—किसी समय था।

कर्ण०—आश्चर्य है! आपहीकी बात हो रही थी सेनापति!

महा०—मेरा सौभाग्य।

आसफ—तुम एकाएक यहाँ किस इरादेसे आ गये महाबतखाँ?

महा०—आपको क्या कुछ आपत्ति है? सम्राज्ञीके निकाले हुए महाबतखाँको क्या सम्राज्ञीके भाई आश्रय देना अस्वीकार करते हैं? कहिए, मै लौटा जाता हूँ।

आसफ—सम्राज्ञीके बर्तावके लिए मुझे दोष न दो महाबतखाँ, उसके लिए मै जिम्मेदार नहीं हूँ। और अगर, खास मेरी बात पूछो महाबत, तो मै मुक्तकण्ठ होकर कह सकता हूँ कि भारतवर्ष-भरमें ऐसा कोई भी आदमी नहीं है जिसपर मै महाबतखाँके सदृश भक्ति रखता होऊँ। महाबत, मेरे घरमे क्या,—मेरे हृदयमें आओ। (गलेसे लगा लेता है।)

कर्ण०—नहीं महावतखाँ, आपको ही यह जाल काटना होगा। आपको ईश्वरने जो शक्ति दी है सो ताले-कुंजीमें वन्द कर रखनेके लिए नहीं दी।

महा०—मैं आपका किंकर हूँ। आज्ञा कीजिए।

कर्ण०—इस कारणसे मैं नहीं कहता सेनापति, मैं इसी दम उस वन्धनसे आपको छुड़ाये देता हूँ। आपके निजके महत्त्वपर ही मुझे पूरा भरोसा है। उसीपर मैं सव छोड़ता हूँ।

महा०—क्या करना होगा, राणा साहव ?

कर्ण०—इस निकम्मे सम्राट् जहाँगीरको उतारकर किसी योग्य पुरुषको सिंहासनपर विठाना होगा।

महा०—वह योग्य पुरुष कौन है ?

आसफ—यह अवश्य है कि सम्राट्के किसी पुत्रको ही विठाना होगा।

कर्ण०—निश्चय ही।

आसफ—तो खुर्रम और शहरयारमेसे चुन लेना होगा। शहरयारके सम्राट् होनेसे नूरजहाँका ही शासन रहेगा। क्योंकि दुर्वल शहरयार उनका दामाद है।

कर्ण०—मेरी सलाह है, शाहज़ादा खुर्रमको सम्राट् वनाओ।

महा०—मेरी भी यही राय है।

आसफ—तो जान पडता है, सम्राट् जहाँगीरको गद्दीसे उतारनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। हकीमने कह दिया है कि वे महीने दो महीनेसे अधिक नहीं जी सकते। किन्तु नूरजहाँ वेगम शहरयारके लिए लडेगी, क्योंकि भविष्यमें शहरयार सम्राट् हो, यह वात उसने सम्राट्से लिखा ली है।

छठा दृश्य

स्थान—नूरजहाँका कमरा

समय—रात

[नूरजहाँ अकेली खड़ी है।]

नूर०—नूरजहाँ! इस मृगतृष्णाके पीछे इतने दिनोंतक तो फिरी; मगर पाया क्या? कुछ नहीं। तब भी जा रही हूँ।—लेकिन आज समझमें आ गया कि अब मैं अपनी शक्तिसे नहीं चल रही हूँ। एक पुराना अभ्यास मुझे कठपुतलीकी तरह चलाये लिये जा रहा है। चलती हूँ;—क्योंकि चलनेके सिवा और उपाय नहीं है।—मरने जा रही हूँ;—तब भी चलती हूँ!

[शहरयारका प्रवेश]

शहर०—मुझे बुलाया था सम्राज्ञी?

नूर०—हाँ शहरयार, सम्राट् मरनेसे पहले तुम्हें अपना उत्तराधिकारी बना गये हैं। यह उनका आज्ञा-पत्र है। तुम सेनासहित आगरेमें जाकर वहाँके राजसिंहासनपर अधिकार कर लो।

शहर०—मैं?

नूर०—हाँ तुम। मेरे भाई आसफ, महाबतखाँ और मेवाड़के राणा एक हो गये हैं। वे खुर्रमके लिए युद्ध करेंगे। खुर्रम अभीतक बहुत दूर है। उन लोगोंने अभी खुसरूके छोटेसे बालकको सिंहासनके लिए खड़ा किया है। तुम जाओ और उन लोगोंके साथ युद्ध करो।

शहर०—मैं युद्ध करूँगा?

नूर०—कुछ मत करो।—जाओ, मैं सेनाको आज्ञा दिये देती हूँ।

(प्रस्थान)

शहर०—मैं सम्राट्! सोचकर भी कलेजा काँप उठता है। मैं युद्ध करूँगा?—यह तो मैंने कभी सोचा भी नहीं! क्या करूँगा?—

(सोचता है।)

[लैलाका प्रवेश]

लैला—शहरयार !

शहर०—लैला !

लैला—तुम साम्राज्यके लिए युद्ध करने जाते हो ?

शहर०—हाँ जाता हूँ लैला ।

लैला—तुम महाबतखाँके साथ युद्ध करोगे ?

शहर०—इसमें आश्चर्य क्या है !

लैला—युद्ध काहेसे कहते हैं, भला बतलाओ तो ? युद्ध किसे कहते हैं, जानते हो ?

शहर०—लैला, तुम मेरी हँसी कर रही हो। मैं तुम्हारा स्वामी हूँ, यह जानती हो ?

लैला—जब इसी गौरवको तुम नहीं सँभाल सकते हो तब सम्राट् होनेको तो बिलकुल ही नहीं सँभाल सकोगे। बोझसे दबकर एकदम मर जाओगे।

शहर०—नहीं, मैंने खूब सोच-समझ लिया है। मैं युद्ध करूँगा। —क्यों न कर सकूँगा ? मैं क्या मनुष्य नहीं ?—तुम सदासे मेरा निरादर करती हो। मैं दिखा दूँगा कि मैं उतना नाचीज नहीं हूँ जितना तुम सोचती हो।—मैं युद्ध करूँगा। मैं सम्राट् होऊँगा।

लैला—स्वामी, तुम इस कुचक्री स्त्रीके फँदेमें न पड़ो। मारे जाओगे। इस इरादेको छोड़ दो।

शहर०—सो क्यों ? मैं सम्राट् हूं। पिता मुझे स्वयं सम्राट् बना गये हैं। अब केवल सिंहासनपर बैठना ही बाकी है। मैं सिंहासन बैठने जा रहा हूँ। अगर कोई बाधा डालेगा तो उससे युद्ध करूँगा।

छठा दृश्य

स्थान—नूरजहाँका कमरा

समय—रात

[नूरजहाँ अकेली खड़ी है ।]

नूर०—नूरजहाँ ! इस मृगतृष्णाके पीछे इतने दिनोतक तो फिरी; मगर पाया क्या ? कुछ नहीं । तब भी जा रही हूँ ।—लेकिन आज समझमें आ गया कि अब मै अपनी शक्तिसे नहीं चल रही हूँ । एक पुराना अभ्यास मुझे कठपुतलीकी तरह चलाये लिये जा रहा है । चलती हूँ;—क्योंकि चलनेके सिवा और उपाय नहीं है ।—मरने जा रही हूँ;—तब भी चलती हूँ ।

[शहरयारका प्रवेश]

शहर०—मुझे बुलाया था सम्राज्ञी ?

नूर०—हाँ शहरयार, सम्राट् मरनेसे पहले तुम्हे अपना उत्तराधिकारी बना गये है । यह उनका आज्ञा-पत्र है । तुम सेनासहित आगरेमे जाकर वहाँके राजसिंहासनपर अधिकार कर लो ।

शहर०—मै ?

नूर०—हाँ तुम । मेरे भाई आसफ, महाबतखाँ और मेवाड़के राणा एक हो गये है । वे खुर्रमके लिए युद्ध करेंगे । खुर्रम अभीतक बहुत दूर है । उन लोगोने अभी खुसरूके छोटेसे बालकको सिंहासनके लिए खड़ा किया है । तुम जाओ और उन लोगोके साथ युद्ध करो ।

शहर०—मै युद्ध करूँगा ?

नूर०—कुछ मत कहो ।—जाओ, मै सेनाको आज्ञा दिये देती हूँ।

(प्रस्थान)

शहर०—मै सम्राट् ! सोचकर भी कलेजा काँप उठता है । मैं युद्ध करूँगा !—यह तो मैने कभी सोचा भी नहीं ! कर सकूँगा ?—

(सोचता है ।)

कभी सम्राट् न होऊँगा। सो, तुम कभी न होगे; मैं जानती हूँ, हो न सकोगे। अगर मेरे बार बार मना करनेपर भी तुम इस उच्च आशा रखनेवाली औरतके कुचक्रमें पड़ जाओगे, तो फिर मैं भी तुम्हारी रक्षा न कर सकूँगी। याद रहे।

(प्रस्थान)

नूर०—शहरयार, तुम मेरी इस ढीट मुँहजोर लड़कीकी बात मत सुनो। तुम सम्राट् होओगे। मैं बहुत दिनोंसे भारतका शासन करती आ रही हूँ। मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। तुम सम्राट् जहाँगीरके बनाये सम्राट् हो। तुम्हें कुछ डर नहीं है। जाओ। सेना ले जाकर आगरेपर अधिकार करो। मैं और भी सेना लेकर पीछे आती हूँ।—जाओ।

(शहरयारका प्रस्थान)

नूर०—(कुछ देरतक अकेले पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़े रहकर फिर धीरे धीरे) वृथा! वृथा! वृथा! हायरे मूढ मनुष्य!—तू हँसता हुआ जय-डंका बजाकर सर्वनाशकी ओर दौड़ा जा रहा है! जीता है केवल मृत्युके साथ और भी घनिष्ठता स्थापित करनेके लिए! सुखके लिए जितना चक्कर काटता है उतना ही कष्ट पाता है!—यह जीवन एक जीती हुई मृत्यु है। हँसी हाहाकारका रूपान्तर है। प्रकाश अन्धकारका आर्त्तनाद है।—मैं खूब समझ रही हूँ कि यह तैयारी वृथा है। मेरा पतन सामने ही है।—एकदम पहाड़की चोटीके किनारेपर खड़ी हूँ। गहरे भँवरके बीच गिर रही हूँ। अब रक्षा नहीं है। विनाशकी लहरोंका कल्लोल सुन रही हूँ। बहुत ही निकट आ गई हूँ। होनहारकी अदृश्य तर्जनी पास ही लक्ष्य कराती मानों मुझे बुलाकर कह रही है कि 'यहाँपर तुम्हारा सर्वनाश है; तब भी तुम्हें यहींपर जाना होगा।' मैं ध्वंसके ओठोंमें एक वर्फके समान कठिन तीक्ष्ण हँसी देख रही हूँ। इस हँसीका अर्थ यही है कि 'मैं तुम्हारी राह देख रहा हूँ।—आओ।'

लैला—मेरे भोले भाले स्वामी,—सुनो! भागो! अगर तुम इस जालमें पड़ गये तो फिर मैं भी तुम्हें नहीं बचा सकूँगी। मेरी माताका फेंका [illegible] पाश है! सावधान!

[नूरजहाँका प्रवेश]

नूर०—क्यों लैला, तुम शहरयारको मेरे खिलाफ भड़का रही हो?

लैला—हाँ, अपने स्वामीको बचानेका मुझे अधिकार है।

नूर०—बचानेका अधिकार है?

लैला—हाँ बचानेका अधिकार है।—हाय नारी! अब तक भी क्या तुम्हारी क्षमताकी महत्त्वाकांक्षा नहीं मिटी? अबतक भी तुम मेरे स्वामीको अपनी मुट्ठीमें रखकर उसकी आड़मे शासन करना चाहती हो?—जरा सोचो तो, यह सदाका रोगी, शिथिल-शरीर, महाब्रतखाँके विरुद्ध युद्ध करने खड़ा हो सकेगा?

नूर०—सहायताके लिए मैं तो हूँ।

लैला—तुम?—अब तुम्हारी क्या शक्ति है! तुम्हारी शक्ति जो पुरुष था, वह आज मिट्टीके नीचे पड़ा हुआ है! उसमें हाथ-पैर हिलानेकी भी ताब नहीं है।—आज तुम्हारी ही कुमन्त्रणासे सेनापति महाब्रतखाँ, राणा कर्णसिंह, शाहजादा खुर्रम, और तुम्हारे सगे भाई आसफ तुम्हारे विरुद्ध हैं। तुम हो? नहीं,—अब यह दर्प तुम्हें नहीं सोहता।—नहीं मा, अपने स्वामीको मैं तुम्हारे फंदेमें न पड़ने दूँगी।

नूर०—लैला, तुम्हारी इतनी मजाल कि तुम मेरे विरुद्ध खड़ी होओ!

लैला—मेरा इरादा अच्छा है, और इसीसे मेरी इतनी मजाल है।

नूर०—जानती हो, मै सम्राज्ञी हूँ।

लैला—थीं कभी।—वह दिन चला गया नूरजहाँ, अब सम्राज्ञी यदि कोई है, तो मै हूँ।—स्वामी, तुमने एक दिन कसम खाई थी कि मैं

नूर०—(लैलाके कन्धेपर हाथ रखकर) लैला, तू मेहरुन्निसाको पहचानती थी?—वह थी तेरी मा और नूरजहाँ थी तेरी सौतेली मा। और मैं?—तेरी कौन हूँ?—मैं तेरी कोई नहीं हूँ! मैं तेरी कोई नहीं हूँ!—(करुण हास्य) कोई नहीं। ओहो हो हो हो (रोती है।)

लैला—ना मा, तुम्हीं मेरी मा हो। नूरजहाँ या मेहरुन्निसा, कोई मेरी मा न थी, तुम्हीं मेरी मा हो।

नूर०—सच?—ओः, कैसा आनन्द है! सच? तूने कैसे जाना लैला? (मेघगर्जन) वह फिर सुन!

लैला—नूरजहाँ और मेहरुन्निसा, दोनों ही सौभाग्यगर्विता, उच्च आशा रखनेवाली, सुखमें मग्न स्त्रियाँ थीं। उनको तो बेटीकी जरूरत थी ही नहीं। मगर तुम मेरी दुखिया मा हो!—वह मा हो जिसका सब ऐश्वर्य लुट गया है और जो क्षोभसे नम्र हो रही है! तुम्हें इस समय एक बेटीकी जरूरत है मा! और इन मेरे अन्धे पतिको स्त्रीकी जरूरत है। आज तुम दोनोंको जितना मैं चाहती हूँ, उतना और कभी नहीं चाहा। अब मैं तुम्हारी ही हूँ। और किसीकी नहीं हूँ। अच्छा तो (एक हाथसे शहरयारका और दूसरे हाथसे नूरजहाँका हाथ पकड़कर) आओ मा! आओ मेरे स्वामी! अपनी समवेदनाके आँसुओंसे नित्य तुम्हारे दुःखके घावोंको धोती रहूँगी।—यहींपर लड़कीका काम है। यहींपर साम्राज्य है।

यवनिका-पतन